42

श्री पञ्चकम्

(हिन्दी अनुवाद)

मूल लेखक (तमिल)
श्री सी. वी. स्वामिशास्त्री

आनन्दानन्दनाथ प्रकाशन द्वितीय पुष्प

श्री पञ्चकम्

42

मूल तमिल-ग्रन्थ के लेखक

"श्रीविद्यावाचस्पति" "श्रीविद्यामार्तण्ड"

पूज्य श्री सी. वी. स्वामीशास्त्रीजी

(श्री. अनन्तानन्दनाथ, मद्रास)

हिन्दी अनुवादिका

श्रीमती सौ. कुसुम जोशी,

एम. ए.

प्रकाशक

आनन्दानन्दनाथ भक्त मण्डली,

इन्दौर (मध्यप्रदेश)

गुरुपूर्णिमा
सं. २०४१

मूल्य
१२/=

प्रकाशक :
आनन्दानन्दनाथ भक्त मण्डली
इन्दौर (म. प्र.)

प्रथम संस्करण
१९८४
१००१ प्रति

मूल्य

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

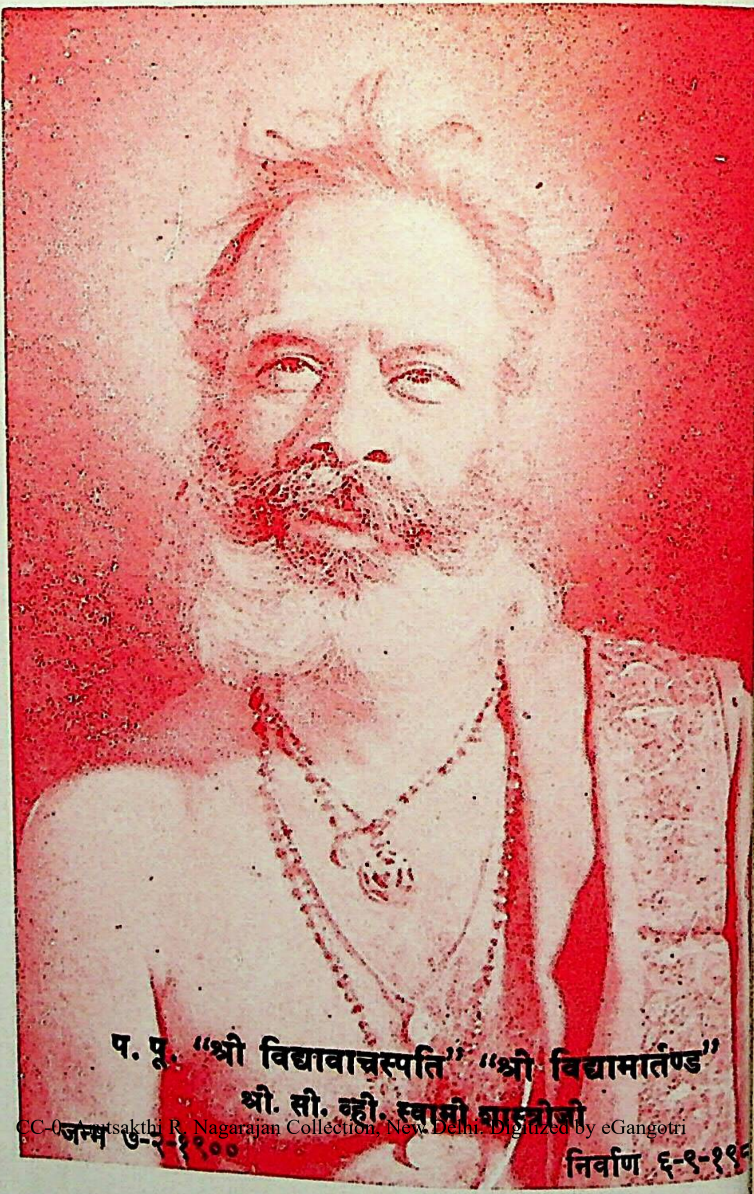
श्रीमती वी. श्यामलादेवी
११, कृष्णापुरम् शुळेमेढ
मद्रास ९४
पिनकोड ६०० ०९४

श्री राजकमल आसोपा
४१, आदर्श नगर,
इन्दौर

डा. आर. बी. दवे
द्वारा/श्री बी. यु. पण्ड्या
३०६, मिन्ट स्ट्रीट दूसरी मंजिल
मद्रास ३
पिनकोड ६००००३

चन्द्रशेखर पाठक
१८/६, पारसी मोहल्ला,
इन्दौर-१ (म. प्र.)
पिनकोड ४५२००१

पुस्तक के प्रणेता



प. पू. "श्री विद्यावाचस्पति" "श्री विद्यामार्तण्ड"

श्री. सी. व्ही. स्वामी शास्त्रीजी

जन्म ७-२-१९००

निर्वाण ६-९-१९

समर्पण

प. पू. श्री ११०८ परम गुरुदेव

श्री आनन्दानन्दनाथ

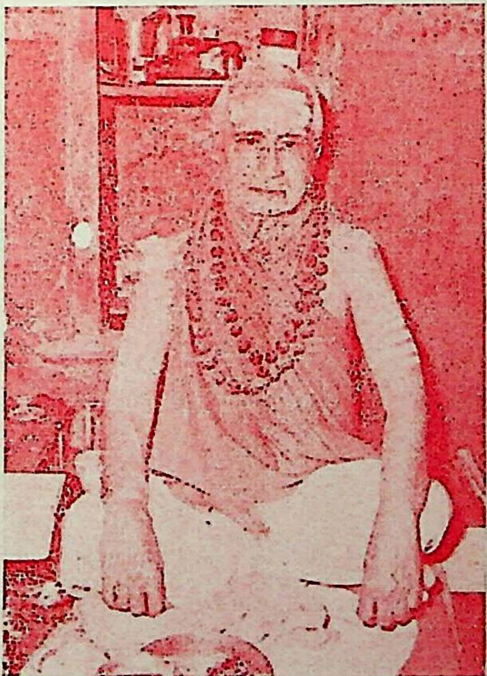
एवं

प. पू. श्री अनन्तानंदनाथ

के

पुनीत चरण कमलों में सभक्ति समर्पित

पूज्य गुरुदेव



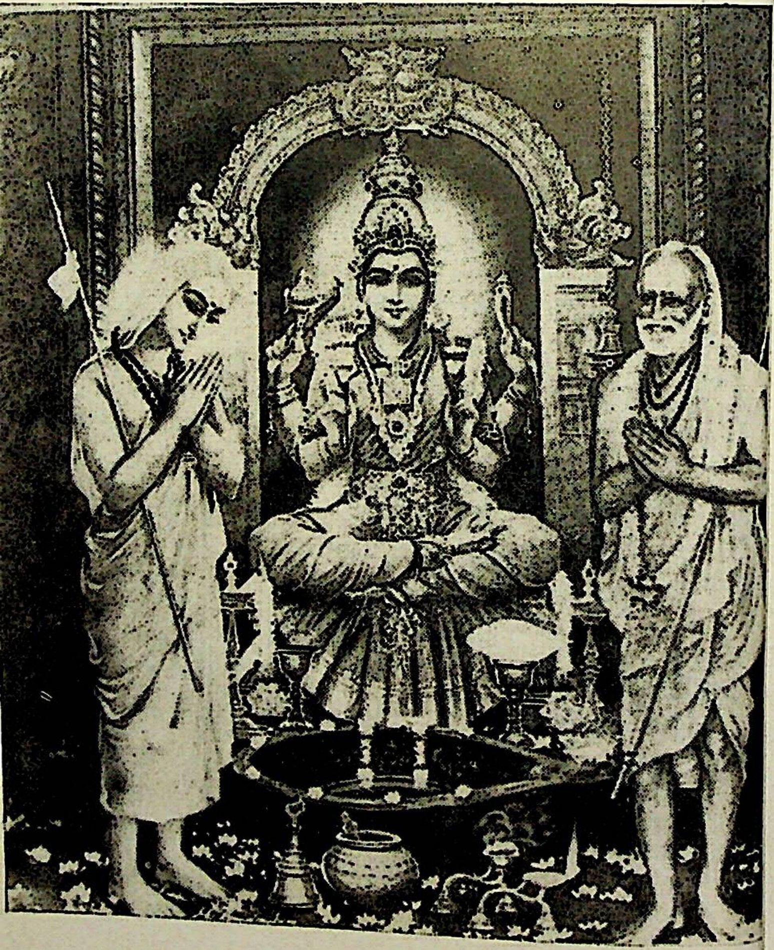
आचार्य श्री विमलानन्दनाथ

[आपकी सद् प्रेरणा से श्री सी. वी. स्वामिशास्त्री
की स्मृति में प्रकाशित]

अनुक्रमणिका

खण्ड (ब)

卐



श्री कामाक्षी

॥ श्रीः ॥

श्री चन्द्रमौलीश्वराय नमः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य

जगद्गुरु-श्रीशङ्करभगवत्पादाचार्यपरम्परागतं

श्रीकामकोटिपीठमहासंस्थानम्

काञ्चीपुरम्

यात्रास्थानम् काञ्चीपुरम् ४-५-१९८५

द्राविडप्रान्ते श्रीविद्याचार्यत्वेन प्रसिद्धैः श्रीस्वामिशास्त्रिभिः तमिळ्भाषायां रचितस्य श्रीपञ्चकाव्यग्रन्थस्य हिन्द्यनुवादः अस्मत्समक्षमुपहृतः।

श्रीविद्योपदेशपरम्परायां प्रथितानां श्रीपुर-श्रीचक्र-श्रीविद्या-श्रीगुरु-श्रीसूक्तानां महिमानः अत्र ग्रन्थे पृथक् पृथक् विशदीकृताः। किञ्च दीक्षाप्रभेदाः, संन्यासाश्रमम्, जगतः शिव-शक्तिमयत्वम्, श्रीचक्रभावना, शक्तिपीठविवरण-मित्यादिविशेषाश्च सम्यक् निरूपिताः।

वल्लभमहागणपत्यादिनामावलीभिः, बाला दुर्गादिस्तोत्रैश्च पूरितमिमं ग्रन्थं श्रीविद्योपासकाः गुरुसाहाय्येन पठित्वा, अर्थावबोधपूर्वकं श्रीविद्योपासनेन श्रेयः श्रेयः-परम्पराः अवाप्नुयुरित्याशास्महे।

नारायणस्मृतिः

॥ श्री ॥

श्रीपञ्चक--पातनिका

'श्रीपञ्चक' आद्यन्त देख गया हूँ। प्रस्तुत कृति गुजराती से रूपान्तरित है। प्रस्तुत कृति में निम्नलिखित पाँच तत्वों की चर्चा की गई है।

श्रीपुरम्, श्रीचक्र, श्रीविद्या, श्रीगुरु तथा श्रीसूक्त। कहा जाता है कि चतुर्दश विद्याओं का सार है। वेदत्रयी और वेद का सार गायत्री। गायत्री भी दो प्रकार की है—परा और अपरा। अपरा गायत्री सर्वश्रुत है—इसमें चौबीस अक्षर हैं और वे तीन पादों में विभक्त हैं। इसमें कभी-कभी आठ अक्षरों का चतुर्थ पाद भी किसी खास आध्यात्मिक प्रयोजन से जोड़ दिया जाता है। गायत्री मन्त्र का परा रूप रहस्यमय है—इसे पञ्च दशाक्षरिका श्रीविद्या के नाम से जाना जाता है। गुरु द्वारा मोक्षोपलब्धि के निमित्त रहस्यात्मक ढंग से शिष्य को प्रदान की जाती है। इसीलिए वरिवस्या-रहस्यकार श्री भास्करराय ने ठीक ही कहा है—

कामो योनिः कमलेत्येवं सांकेतिकैः शब्दैः।
व्यवहरति न तु प्रकटं यां वेद पुरुषोऽपि॥

यहाँ तक कि वेद पुरुष भी इस मन्त्र को सांकेतिक शब्दों से ही व्यवहार करता है। शांखायन श्रुति में कहा गया है :—

प्रत्न्येषा

कामो योनिः कमला वज्रपाणि गुंहाहसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः; ।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमाताऽऽदिविद्या ॥

इन सांकेतिक शब्दों से पञ्च दशाक्षरिका श्रीविद्या मन्त्र उक्त हुआ है। वरिवस्या रहस्य नामक पुस्तक में श्री भास्कर राय ने इस मन्त्र का अनेकविध विस्तार से व्याख्यान किया है।

श्रीविद्या का स्थूल शरीर श्रीचक्र है। यह महात्रिपुर सुन्दरी का निवास स्थान माना जाता है। यह श्री चक्र ब्रम्हाण्ड तथा पिण्ड-दोनों का प्रतीक है। इसमें ४ शिव कोण तथा पांच शक्ति कोण होते हैं। दोनों के योग से सम्पूर्ण चक्र बनता है। इनका मुख एक दूसरे के विपरीत रहता है। सृष्टि क्रम में पाँच शक्ति त्रिकोण ऊर्ध्वमुख रहते हैं और चार शिव कोण अधोमुख रहते हैं। लय क्रम में शक्ति त्रिकोण अधोमुख और शिव त्रिकोण ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं। प्रथम केन्द्रीय त्रिकोण, जिसके केन्द्र में शंभु का स्थान है—को छोड़कर शेष त्रिकोणों की संख्या ४२ है। कुल मिलाकर ४३ त्रिकोण हैं। सौंदर्य लहरी में इसी श्रीचक्र को स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

चतुर्भिः श्री कण्ठैः शिवयुवतिभिः पंचभिरपि
प्रभिन्नाभिः शंभोर्नवभिरपि मूल प्रकृतिभिः।
त्रयश्चत्वारिंशद् वसुदल कलाश्र (श्च) त्रिवलय
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरण (भवन) कोणाः परिणताः ॥

अर्थात् चार श्री कंण्ठ और पांच शिव युवतियाँ-इन नव मूल प्रकृतियों से ४३ त्रिकोण बनते हैं, जो शंभु के बिन्दु स्थान से भिन्न हैं। वे तीन वृत्तों और तीन रेखाओं सहित आठ और सोलह दलों से युक्त हैं। तैत्तिरीयारण्यक में कहा है कि पृश्नि ऋषियों ने श्री चक्र की पूजा की थी और उसकी सहायता से कुण्डलिनी शक्ति का जागरण करके उसे सहस्रार में स्थित किया था। इस प्रकार कहने का आशय यह कि श्री चक्र की अधिष्ठात्री शक्ति है—महात्रिपुर सुन्दरी और श्री चक्र है उसका वास स्थान (शरीर) कहा है।

३

शरीरं चिन्तयेदादौ निजं श्री चक्ररूपिणम्

× × × ×

चतुर्भिः शिव चक्रैश्च शक्ति चक्रैश्च पञ्चभिः ।
नव चक्रैश्च संसिद्धं श्री चक्रं शिवयोः वपुः ॥

यों इस श्री चक्र का विस्तृत विवरण अन्यत्र भीं उपलब्ध है ।

श्री गुरुः

वरिवस्या रहस्यकार ने श्रीविद्या का सप्रपञ्च व्याख्यान करने के बाद अंततः कहा

सद्गुरु कुलतः कृपया लब्धं कामानियं सूते ।
निज बुद्धिमात्र जन्या पापं कन्या यथा स्वीया ॥

यदि श्रीविद्योपासना को सेवा से प्रसन्न गुरु कुल के घर से साधक लाता है तब तो वह उसकी समस्त इच्छाओं की पूर्ति करती है किंतु परम्परा विहीन ज्ञानमात्र गर्वित व्यक्ति यदि उसे अन्यथा लाता है तब तो वह पाप करता है। निष्कर्ष यह कि इस परम्परा में श्री गुरु की अनिवार्यता है । यह गुरुतत्व भी नितान्त गभीर तत्व है। पराशक्ति ही मध्यमा भूमि पर गुरु शिष्य भावापन्न होकर परम सत्य को अवतरित करती है । गुरु शब्द की निरुक्ति देते हुए कहा गया है ।

गुकारोऽधकारः स्याद् रुकारस्तन्निरोधकृत् ।
अंधकार निरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥

अज्ञानाधकार निरोधी होने के कारण गुरु को गुरु कहा जाता है ।

श्रीविद्या की उपासना के सन्दर्भ में मंत्र, चक्र, चक्र की अधिष्ठात्री शक्ति, श्रीपुर तथा श्री सूक्त का सम्यक् ज्ञान आवश्यक है। ज्ञान को आचरण से निरन्तर जोड़े रहना ही हिन्दू धर्म की उल्लेख्य विशेषता है। श्रुति कहती है–"विद्यया श्रद्धया उपनिषदावा वीर्यवत्तरं भवति" उपासना के संदर्भ में विद्या का अर्थ प्रयोग पद्धति अथवा व्यवहार विज्ञान से ही है। प्रयोग पद्धति में (मंत्र, यंत्र तथा तंत्र) का सम्यक् बोध ही समाविष्ट है। श्रद्धा का स्थूल अर्थ है–जो कार्य करना हो, उसका हृदय से सम्यक् योग होना चाहिए। हृदय से सम्यक् योग न होने पर विद्या का प्रयोग न तो सफल होता है और न ही वीर्यवत्तर। उपनिषद् तो रहस्य अथवा अन्तर्निहित तत्व का बोध है हीं। वा का अर्थ विकल्प भी है और समुच्चय भी। वीर्यवत्तर कहने का भी एक अभिप्राय है, और वह यह कि इन तीनों के योग से अथवा सर्वमूल श्रद्धा के होने से प्रयोग उत्तरोत्तर जोर पकड़ता है–वह वीर्यवत्तर हो जाता है। इनकी सहायता से प्रयोग बढ़ता रहेगा तो वीर्यवत्तम भी हो सकता है।

वस्तुतः उपासना, ज्ञान और क्रिया का मिलित और युग्म रूप है। श्री विद्या या पञ्च दशाक्षरिका का जप बिना ज्ञान पूर्वक क्रिया के कभी "समर्थ" नहीं हो सकता। यह तो सभी जानते हैं कि क्रियाहीन ज्ञान पङ्गु है और ज्ञान हीन क्रिया अंध। पहला वायवीय लोक में विचरण है और दूसरा, 'श्रम एव ही केवलम्"—अतः दोनों को परिणीत होना चाहिये। प्रज्ञा का शरीर इन दोनों के मिथुनभाव से सम्पन्न होता है। केवल ज्ञानी के लिए ही श्रुति कहती है–"भूयः तमः" और केवल क्रियावान् को–"अंधन्तम प्रविशन्ति" फलतः "उभयं सह" की बात कही गई है दोनों को साथ होना चाहिए। केवल क्रिया में तब भी कुछ सचेष्टता है, केवल ज्ञान में–विनियोग के एकान्त अभाव में–निश्चेष्टता ही निश्चेष्टता का घनीभूत अन्धकार है। दोनों के योग से ही, " मृत्युं तीर्त्वा.........अमृतमश्नुते " संभव है–अन्यथा जन्म-मरण के अंधेरे में ही चक्कर काटना रहेगा।

महात्रिपुर सुन्दरी की उपासना का फल मोक्ष ही नहीं, भोग भी है। पर यह भोग बद्धावस्था का भोग नहीं है, मुक्तावस्था का भोग है। यहाँ सिद्ध भोक्ता नहीं है, भोग होते हुए देखता है। कहा गया है—

श्रीसुन्दरी सेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।
लेकिन साथ ही भोग का स्वरूप स्पष्ट करते हुए यह भी कहा गया है —

भोक्त्र्यास्तस्याः स्वतंत्रायाः भोग्यैकीकार एव सः।
स एव भोगः सा मुक्तिस्तदेव परमं पदम्॥

वह स्वतंत्रता महात्रिपुर सुंदरी भोग्य से एकीकृत हो जाती है। वहाँ भोग्य और भोक्त्री का पृथक् भाव समाप्त हो जाता है- यह दशा अपनी शक्ति से ही अपना आस्वाद लेना है।

मनीषी सौभाग्यवती कुसुम [redacted] जोशी ने (मूल तमिल) गुजराती से हिन्दी में इस कृति का अनुवाद करके हिन्दी जगत् का उपकार किया है- निश्चय ही हिन्दी जगत् उसका ऋणी है।

स्वतंत्रता दिवस
१५-८-८३

रामभूर्ती त्रिपाठी
देवास रोड़, उज्जैन

निवेदन

गुरुर्ब्रम्हा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रम्ह तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

श्री गुरुनाथ की आज्ञा शिरोधार्य करके मैंने इस श्रीपंञ्चकम् का गुजराती भाषा से हिन्दी में अनुवाद करने का प्रयास किया है । लेकिन मैं स्वय इस विषय में अज्ञानी हूं । यह अनुवाद तो मेरे श्री गुरुनाथ के पूर्ण अनुग्रह एवं असीम अनुकंपा से पूर्ण हुआ है । यह अनुवाद कार्य मुझ पर भगवती एवं श्री गुरु की असीम कृपा का फल है जो कि मैं शब्दों द्वारा व्यक्त करने में असमर्थ हूं । मैं तो बस इतना ही कह सकती हूं—"गुरु कृपा हि केवलं शिष्य परममंगलम् ।"

परम पूज्य सी० वी० स्वामी शास्त्रीजी मद्रास के रहने वाले थे । उनका परिचय एवं अनुग्रह मेरे गुरु नाथ द्वारा हमें प्राप्त हुआ है । श्रीविद्या उपासना के क्षेत्र में श्री शास्त्रीजी भारत में अद्वितीय विभूति थे । वे आगम-निगम, वेद एवं तन्त्रशास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे । आपको तामिल, मलयालम एवं संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था । आप मेरे गुरु के गाढ़ मित्र एवं अग्रज सहोदर तुल्य ही थे । इसी कारण गुजराती एवं हिन्दी भाषी लोग आपके सम्पर्क में आये थे । आपने उपासना से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की रचना की है । आपने श्रीविद्योपासकों के मार्गदर्शनार्थ इस पुस्तक "श्रीपंञ्चकम्" की रचना तामिल भाषा में अति संक्षिप्त रूप में की है । उन्होंने "श्रीविद्या" के गुजराती

उपासकों पर अनुग्रह करने के लिए मेरे श्री गुरुनाथ को तामिल से गुजराती भाषा में "श्रीपंञ्चकम्" का अनुवाद करने का आदेश दिया। उनकी इच्छानुसार श्री गुरुनाथ ने गुजराती "श्रीपंञ्चकम्" का हिन्दी में अनुवाद करने की मुझे आज्ञा प्रदान की। यह मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है।

परम पूज्य शास्त्रीजी के निधन से भारत की श्रीविद्योपासकों की नक्षत्र माला में से एक ज्वाज्वल्यमान नक्षत्र का विलीन होना श्रीविद्योपासकों के लिये एक दुःखद घटना है यह ऐसी क्षति हुई है जिसकी वर्तमान समय में क्षतिपूर्ति होना असम्भव है।

इस हिन्दी अनुवाद से हिन्दीभाषी श्रीविद्योपासक मार्ग दर्शन उपलब्ध करके श्री सच्चिदानन्द परब्रम्ह स्वरूपिणी, श्री चित्शक्तिस्वरूपिणी श्री राजराजेश्वरी श्री ललिता महात्रिपुर सुन्दरी का अनुग्रह प्राप्त करेंगे।

इस पुस्तक के प्रकाशन कार्य में जिन जिन बन्धुओं ने तन मन धन से सहायता दी है और डॉ. राममूर्ति त्रिपाठीजी एम. ए. डी. लिट् (अध्यक्ष हिन्दी विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन) ने परिश्रम पूर्वक "श्रीपंञ्चक पातनिका" गूढ़ रहस्य भरा हुआ लेख सरलता पूर्वक लिखा है उन सब के हम ऋणी एवं आभारी हैं। श्री परब्रह्मस्वरूपिणि, श्री सच्चिदानन्दरूपिणि परा भट्टारिका श्री राजराजेश्वरी श्री ललिता महात्रिपुर सुन्दरी परास्वा से हार्दिक प्रार्थना है कि अपने अनुग्रह से उन सब का जीवन यशस्वी सुखदायी एव क्षेम कुशल बनाए।

यदि इस पुस्तक के अनुवाद कार्य में कहीं भाषा सम्बन्धी त्रुटियां एवं अशुद्धियां रह गयी हों तो उन्हें मेरी भूल समझकर क्षमा करेंगे।

श्री गुरुचरणरज

सौ॰ कुसुम जोशी

निवेदन

गुरुर्ब्रम्हा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रम्ह तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

श्री गुरुनाथ की आज्ञा शिरोधार्य करके मैंने इस श्रीपंञ्चकम् का गुजराती भाषा से हिन्दी में अनुवाद करने का प्रयास किया है। लेकिन मैं स्वय इस विषय में अज्ञानी हूं। यह अनुवाद तो मेरे श्री गुरुनाथ के पूर्ण अनुग्रह एवं असीम अनुकंपा से पूर्ण हुआ है। यह अनुवाद कार्य मुझ पर भगवती एवं श्री गुरु की असीम कृपा का फल है जो कि मैं शब्दों द्वारा व्यक्त करने में असमर्थ हूं। मैं तो बस इतना ही कह सकती हूं—"गुरु कृपा हि केवलं शिष्य परममंगलम् ।"

परम पूज्य सी० वी० स्वामी शास्त्रीजी मद्रास के रहने वाले थे। उनका परिचय एवं अनुग्रह मेरे गुरु नाथ द्वारा हमें प्राप्त हुआ है। श्रीविद्या उपासना के क्षेत्र में श्री शास्त्रीजी भारत में अद्वितीय विभूति थे। वे आगम-निगम, वेद एवं तन्त्रशास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे। आपको तामिल, मलयालम एवं संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था। आप मेरे गुरु के गाढ़ मित्र एवं अग्रज सहोदर तुल्य ही थे। इसी कारण गुजराती एवं हिन्दी भाषी लोग आपके सम्पर्क में आये थे। आपने उपासना से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की रचना की है। आपने श्रीविद्योपासकों के मार्गदर्शनार्थ इस पुस्तक "श्रीपंञ्चकम्" की रचना तामिल भाषा में अति संक्षिप्त रूप में की है। उन्होंने "श्रीविद्या" के गुजराती

उपासकों पर अनुग्रह करने के लिए मेरे श्री गुरुनाथ को तामिल से गुजराती भाषा में "श्रीपंञ्चकम्" का अनुवाद करने का आदेश दिया। उनकी इच्छानुसार श्री गुरुनाथ ने गुजराती "श्रीपंञ्चकम्" का हिन्दी में अनुवाद करने की मुझे आज्ञा प्रदान की। यह मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है।

परम पूज्य शास्त्रीजी के निधन से भारत की श्रीविद्योपासकों की नक्षत्र माला में से एक ज्वाज्वल्यमान नक्षत्र का विलीन होना श्रीविद्योपासकों के लिये एक दुःखद घटना है यह ऐसी क्षति हुई है जिसकी वर्तमान समय में क्षतिपूर्ति होना असम्भव है।

इस हिन्दी अनुवाद से हिन्दीभाषी श्रीविद्योपासक मार्ग दर्शन उपलब्ध करके श्री सच्चिदानन्द परब्रम्ह स्वरूपिणी, श्री चित्शक्तिस्वरूपिणी श्री राजराजेश्वरी श्री ललिता महात्रिपुर सुन्दरी का अनुग्रह प्राप्त करेंगे।

इस पुस्तक के प्रकाशन कार्य में जिन जिन बन्धुओं ने तन मन धन से सहायता दी है और डॉ. राममूर्ति त्रिपाठीजी एम. ए. डी. लिट् (अध्यक्ष हिन्दी विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन) ने परिश्रम पूर्वक "श्रीपंञ्चक पातनिका" गूढ़ रहस्य भरा हुआ लेख सरलता पूर्वक लिखा है उन सब के हम ऋणी एवं आभारी हैं। श्री परब्रह्मस्वरूपिणि, श्री सच्चिदानन्दरूपिणि परा भट्टारिका श्री राजराजेश्वरी श्री ललिता महात्रिपुर सुन्दरी पराम्बा से हार्दिक प्रार्थना है कि अपने अनुग्रह से उन सब का जीवन यशस्वी सुखदायी एव क्षेम कुशल बनाए।

यदि इस पुस्तक के अनुवाद कार्य में कहीं भाषा सम्बन्धी त्रुटियां एवं अशुद्धियां रह गयी हों तो उन्हें मेरी भूल समझकर क्षमा करेंगे।

श्री गुरुचरणरज
सौ० कुसुम जोशी

॥ श्री गुरुः जयति

श्रीपंचक पूर्वारम्भ

"श्री गुरुं गणपतिं वन्दे,
बालां पंचदशीमपि ।
महागणपतिं चैव,
श्री महाषोडशीमपि ॥"

भारतवर्ष में किसी भी कार्य के प्रारम्भ में 'श्रीगुरु' एवं "श्री गणेश" का स्मरण किया जाता है। भारत=भासि+रत; भारत का अर्थ-जो अद्वैत के महाप्रकाश में उत्पन्न हुआ हो वह भारत। कोई भी कार्यारम्भ "श्रीगुरुचरणाभ्यां नमः" से किया जाता है। "श्री गुरु-चरण" का स्मरण गौरव की बात है। इसका बहुत महत्व है। दक्षिण भारत में कहावत है कि "पैर पकड़ने से मस्तक पर चढ़ा जाता है।" यह सर्वमान्य बात है। इस कहावत का यथार्थ अर्थ क्या है ? श्री गुरु के चरण पकड़ लेने से, उनके अनुग्रह से वे अपनी चरणपादुका अर्थात् (शिष्य के) मस्तक पर रखते हैं। (गुरु पादुका मंत्र का उपदेश करते हैं, उस समय अपने मस्तक में प्रकाश दीखता है एवं नये-नये अर्थों का ज्ञान प्राप्त होता है।)

इसके अतिरिक्त 'गुरु' शब्द का अर्थ क्या है ? "गु" कार क्या है ? "रु" कार क्या है ? गु =३, रु =२, ३+२=५। इस ५ संख्या से हमें पंचमहाभूत का बोध होता है। पंचभूत ही पंचायतन देवता हैं। ये पंचभूत ब्रम्ह में से उत्पन्न हुए हैं। "तस्माद्वा एतस्मादात्मनः

॥ श्री गुरुः जयति ॥

श्रीपञ्चकम्

पूर्वारम्भ

"श्री गुरुं गणपतिं वन्दे,
बालां पंचदशीमपि ।
महागणपतिं चैव,
श्री महाषोडशीमपि ॥"

भारतवर्ष में किसी भी कार्य के प्रारम्भ में 'श्रीगुरु' एवं "श्री गणेश" का स्मरण किया जाता है। भारत=भासि+रत; भारत का अर्थ-जो अद्वैत के महाप्रकाश में उत्पन्न हुआ हो वह भारत। कोई भी कार्यारम्भ "श्रीगुरुचरणाभ्यां नमः" से किया जाता है। "श्रीगुरुचरण" का स्मरण गौरव की बात है। इसका बहुत महत्व है। दक्षिण भारत में कहावत है कि "पैर पकड़ने से मस्तक पर चढ़ा जाता है।" यह सर्वमान्य बात है। इस कहावत का यथार्थ अर्थ क्या है? श्री गुरु के चरण पकड़ लेने से, उनके अनुग्रह से वे अपनी चरणपादुका अर्थात् (शिष्य के) मस्तक पर रखते हैं। (गुरु पादुका मंत्र का उपदेश करते हैं, उस समय अपने मस्तक में प्रकाश दीखता है एवं नये-नये अर्थों का ज्ञान प्राप्त होता है।)

इसके अतिरिक्त 'गुरु' शब्द का अर्थ क्या है? "गु" कार क्या है? "रु" कार क्या है? गु=३, रु=२, ३+२=५। इस ५ संख्या से हमें पंचमहाभूत का बोध होता है। पंचभूत ही पंचायतन देवता हैं। ये पंचभूत ब्रह्म में से उत्पन्न हुए है। "तस्माद्वा एतस्मादात्मनः,

आकाशः संभूतः ।। आकाशाद्वायु ।। वायोरग्निः ।। अग्नेरापः ।। अद्भ्यः पृथिवी ।।" इस प्रकार तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है ।

पंचायतन देवता की पूजा करने से हमें उसका अद्वैत ज्ञान प्राप्त होता है। स्मृति में कहा है।

पंचायतन देवता— "शिवः खं अनिलः शक्तिः रविरग्निः जलं हरिः ।
महागणेशः संप्रोक्तः विश्वं एतन्मयंनुमः ।।'

महान् अप्पय दीक्षित ने "रत्नत्रय-परीक्षा" नामक ग्रन्थ की रचना की है। उसमें रत्नत्रय का अर्थ शिव-शक्ति-विष्णु हैं। उसके वाद सूर्य में शिवभाव एवं विष्णुभाव दोनों हैं। "सौरमण्डलमध्यस्थं सभव" का अर्थ है शिव। एवं "ध्येयः सदा सवितृ मंडल मध्यवर्ती नारायणः" का अर्थ विष्णु होता है। अंतिम मूमि का अर्थ गणपति होता है। उस गणपति के हाथ में पाश अंकुश का अर्थ शक्ति होता है। इस प्रकार गणपति शक्ति होने के कारण मृत्युलोक में सर्व कार्यारंभ में उनका (गणपति) का पूजन किया जाता है। "ग-ण-प-ति" गणपति ये पंचदशी की प्रतीति करवाते हैं। सांख्यशास्त्र की दृष्टि से ग=३, ण=५, प=१, ति=६ इन संख्याओं का योग ३+५+१+६= १५ होता है। 'अंकानां वामतो गतिः" के अनुसार गणना होना चाहिये। इस प्रकार ति=६, प=१, ण=५, ग=३ का योग १५ होता है। इसी प्रकार महागणपति में भी ति=६, प=१, ण=५, ग=३, हा=८, म=५ का योग २८ होता है। ये २८ अंक महाषोडशी के भी हैं। इस प्रकार गणपति एवं महागणपति में किसी प्रकार का भेद नहीं हैं उसी तरह महागणपति एवं महाषोडशी में भी किसी प्रकार का भेद नहीं है।

"बाला"

वा=३, ला=३, इसका योग ६। यह ६ का अंक त्र्यक्षरी बाला एवं षड्क्षरी बाला का होता है। ३×३=९ के अनुसार नवाक्षरी बालामंत्र होता है। यह नव संख्या भी नवार्णमंत्र का एवं "नवार्णं मेरुमंत्रस्यात्" इस तरह मेरुमंत्र का भी बोध देती है। यह मेरुमंत्र प्रत्येक विद्या का आधार है। मंत्र एवं विद्या दो भेद हैं। त्रिपुर के मंत्र तथा विद्या में पुरुषमंत्र-"विद्याः समस्ताः तव देवि भेदाः।" ऐसा मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है। उपरोक्त कथनानुसार गणपति मंत्र विद्या में गिना जाता है। "सैषा गणेश विद्या।" ऐसा गणेश उपनिषद् में कहा गया है।

'बाला' विद्या के तीन अक्षर पूर्व में कहे गये हैं। उन तीनों में प्रथम बाग्बीजं द्वितीय कामराजबीजं और तृतीय शक्ति-बीजं है। ये तीनों बीजाक्षर भी पंचदशी में वाग्भवकूट, कामराजकूट एवं शक्तिकूट कहलाते हैं। ये तीनों कूट महाषोडशी में बीज होते हैं। महाषोडशी में इन तीनों कूटों को बीज में परिवर्तित करने से १६ अक्षर होते हैं। अलग-अलग अक्षर गिने तो २८ अक्षर होते हैं। २८ अक्षरों को २×८ करें तो १६ अक्षर षोडशी मंत्र होता है। पंचदशी मंत्र में श्रीं बीज जोड़ने से षोडशी मंत्र बनता है। महाषोडशी के २८ अक्षर किस प्रकार ज्ञात हों ? बाला बीज जब पंचदशी में आते हैं तब उनका विस्तार होता है। महाषोडशी में आते हैं तब बीजाक्षर होते हैं। उदाहरणार्थ—एक बीज में से वृक्ष होकर फल देता है, वह पंचदशी स्वरूप होता है। उस फल में से बीज होता है वह महाषोडशी स्वरूप होता है। "बाला" यह ज्ञान की प्राथमिक दशा है। "पंचदशी यह ज्ञान की अभ्यास दशा है। "महाषोडशी" ज्ञान की अनुभव दशा है।

गणपति की १५ संख्याओं का तथा महागणपति की २८ संख्याओं का उसी प्रकार पंचदशी के १५ अक्षरों का एवं महाषोडशी के २८ अक्षरों का अनुभव करना हो तो श्रीगुरु द्वारा उपदेश प्राप्त कर, महागणपति मंत्र का उपदेश लेकर--"अष्टाविंशतिः वर्ण विशिष्टः महाहेरम्बस्य मनोः" गौड़पादाचार्य के सूत्रानुसार २८ अक्षर के महागणपति मंत्र का पुरश्चरण करके, "श्री गणेशस्तर्पणः प्रियः" अतः २८ अक्षर का चतुरावृत्ति तर्पण करने से महाषोडशी तक पहुंचा जाता है। महाषोडशी तक पहुंचने पर ज्ञान का पूर्ण अनुभव होता है।

श्रीगुरु के पास से महागणपति बाला इत्यादि का उपदेश लेकर श्री महागणपति का जप करके, बाला के बारह वर्ष तक, महाषोडषी के १२ वर्ष तक जप करने से पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है।

कितने ही महापुरुषों ने बाला की उपासना से (जप से ही) पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया है। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बी एक व्यक्ति ने महान संत पुरुष के पास से श्रीबाला का उपदेश प्राप्त कर अद्वैत विषय पर दो घण्टे तक संभाषण किया था। यह मैं अपने स्वयं के अनुभव से जानता हूं। आज श्रीविद्या की स्थिति देखकर मन में बहुत कष्ट होता है। क्योंकि आजकल के श्रीविद्या के दीक्षार्थी विषय का ज्ञान हुए विना ही पुस्तकों में से अथवा महापुरुषों के लेखों में से चुराकर स्वयं के नाम से लेख लिखने हैं। किन्तु विषय का रहस्य ज्ञान उन्हें नहीं होता है।

प्राचीनकाल में आठ वर्ष के वालक का उपनयन संस्कार करके बारह वर्षों तक गुरु के आश्रम में शिक्षण दिलवाकर, गायत्री जप करवाकर, विद्या का अभ्यास करवाकर, उसके बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करवाकर, ज्ञान का अनुभव करवाया जाता था। आजकल प्रातः उप-

नयन, मध्याह्न विवाह एवं सायंकाले ऋतु शान्ति की तरह प्रातः बाला का उपदेश, मध्यान्ह काल में पंचदशी का उपदेश, एवं सायंकाले महाषोडशी का उपदेश देने के लिए आधुनिक शिष्य समुदाय गुरु को बाध्य करते हैं। श्री गुरु इस प्रकार न करे तो "गुरु को लौकिक ज्ञान नहीं है। शिष्यों को क्या मुसीवतें हैं इसकी उन्हें खवर नहीं है।" इस प्रकार कहते हैं। कितने ही गुरु महानुभाव द्रव्य की लालसा से शिष्य के कथनानुसार करते हैं। प्राचीनकाल में गुरु की आज्ञानुसार शिष्य कार्य करते थे। वर्तमान काल में शिष्यों के कथनानुसार गुरु कार्य करते हैं।

उपदेश किये हुए मंत्र की सिद्धि प्राप्ति होती है। उसके कितने ही लक्षण शास्त्रों में कहे गये हैं, उन्हें कोई देखता ही नहीं है। आज के युग में शिष्य गुरु के पास जाकर कहता है कि पंचदशी का उपदेश मुझे मिला हुआ है। अतः आप षोडशी का उपदेश दीजिये। तव गुरु पूछते हैं कि पंचदशी के उपदेश से क्या-क्या अनुभव हुआ है --वह कहो ? तव जवाव में शिष्य गुरु को कहता है कि--"उस सबका क्या करना ? आप तो षोडशी का उपदेश दीजिये।" जिस प्रकार विद्यालय में अध्ययन करते हुए विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए बिना ही अग्रिम कक्षा में पढ़ने की बात करते हैं, वैसी ही यह स्थिति है। यह सब कलियुग का प्रभाव है।

श्री गणपति के विषय में संक्षेप में लिखकर आगे 'कलौदेवि-विनायकौ" के अनुसार पूर्व क्रमानुसार गणपति की उपासना करके शीघ्र गणपति मंत्र सिद्ध होता है। गणपति का एक नाम विनायक है। विनायक की संख्या की दृष्टि से ११०४ संख्या होती है। अन्तिम संख्या ४ से पूर्व संख्या का योग ६ होता है। चांद्रमान की रीति से ६ठा महिना

भाद्रपद आता है। ४+१=५ सौरमान अनुसार सिंह मास आता है। इस मास की शुक्लपक्ष की चतुर्थी विनायक कहलाती है। प्रथम १ संख्या शुक्ल पक्ष बतलाती है। अन्तिम संख्या ४ का अर्थ चतुर्थी होता है। प्रथम एवं द्वितीय संख्या ११ अर्थात् हस्त नक्षत्र दिखलाती है।

वेद में कार्तिक नक्षत्र से शुरू होता है। महाराष्ट्र प्रदेश में गणेशांक पुस्तक में बुधवार को गणेश का जन्म दर्शाया गया है। अतः अन्तिम संख्या ४ बुधवार बतलाती है। विनायक सख्या-शास्त्रानुसार विनायक चतुर्थी मास, पक्ष, वार प्रदर्शित करती है। विनायक को दूर्वार्चन बहुत प्रिय है। दूर्वा जीव भाव व्यक्त करती है। जीवः=४८ एवं दूर्वा=४८ दोनों एक हैं। दूर्वा का गुण है कहीं भी उगकर दूर-दूर तक फैलना। उसी प्रकार एक ही जीव भी एक शरीर में रहकर अनेक जन्म धारण करता है। इन अनेक जन्मों का नाश करने के लिए गणेश चतुर्थी के दिन 'दूर्वायुग्मं समर्पयामि' के द्वारा पूजन होता है। अतः अनेक जन्म के दुःख-पाप, द्वन्द्व का क्षय करने के लिए दूर्वा-युग्म से पूजन किया जाता है। दूर्वा गणेश को अर्पण करने से जन्मों का नाश होता है।

गणेश को मोदक बहुत प्रिय हैं। मोदक का अर्थ प्रपंच होता है। प्रपंच सत्-चित्-आनन्द-नाम-रूप पाँच अंश से बनता है। ये सच्चिदानन्द नाम रूप में छिपे हैं। उसी प्रकार गुड़, नारियल, चने की दाल इन तीनों को चांवल के आटे का कवच बनाकर रखी गई अन्दर की वस्तु का नाम पूर्ण है। वही सच्चिदानन्द पूर्ण नाम रूप कवच स्वरूप बनाकर सच्चिदानन्द को अन्दर छिपाये हुए है। जैसे चाँवल के आटे में छिपाया हुआ गुड़, चने का आटा है। उसे तलने पर मोदक बनते हैं। उसे द्रविड़ भाषा में 'कोयुकट्ट' कहते हैं।

इस 'कोयुकट्ट' विद्यमान सम्पूर्ण संख्याशास्त्रीय दृष्टि से ५१ होता है। यह ५१ अक्षर सूचित करते हैं। अक्षर का अर्थ जिसका नाश न हो वह। सच्चिदानन्द जीव को जिस तरह आनन्द प्रदान करता वैसे ही नष्ट न हो ऐसा पूर्ण खाने से अति मधुर आनन्द अर्पित करता है। इस प्रकार तत्व जान कर गणपति की उपासना करना चाहिए इससे जीव ब्रम्हानन्द को प्राप्त कर आत्म-स्वरूप श्री विद्या ज्ञान की प्राप्ति करता है।

श्रीपंचकम्

श्रीपुरं, श्रीचक्रराजं, श्रीविद्या, श्रीगुरुस्तथा, श्रीसूक्तश्चेति, श्रीपंचहित, श्रीपंचकम्-इतिस्मृतं श्रीपुर, श्रीचक्रं, श्रीविद्या, श्रीगुरु, श्रीसूक्तः एवं श्री पंचकम् ।

इन पांचों में प्रथम अक्षर श्री छोड़ दिया जाये तो उसका अर्थ ही बदल जावेगा। श्री अक्षर निकाल देने से पुरं, चक्रं, विद्या गुरुः एवं सूक्तः ही शेष रहे तो इन पांचों का अर्थ बदल जाता है एवं गौरव कम हो जाता है।

प्रथम श्री अक्षर लगा देने से उसका महत्व बढ़ता है। यथा श्रीपुरं, श्रीचक्र, श्रीविद्या, श्रीगुरु, एवं श्रीसूक्त होता है एवं अन्य कोई प्रकार का अर्थ बदले बिना गौरव बढ़ता है, अतः श्रीपंचकं कहलाता है।

तंत्र में श्रीविद्या का गौरव पूर्ण स्थान है। अम्बा के उपासकों को रोज श्रीपंचकं का ध्यान हृदय में करने से मरण का भय नहीं रहता है। राम नाम के जप के समान श्रीपंचकं शब्द का जप करना ही पर्याप्त नहीं हैं। किन्तु श्रीपुरं क्या है ? यह कहां तक फैला हुआ है ? इसका तत्व क्या है ? श्रीचक्र का स्वरूप क्या है ? उसका तत्व क्या है ? इसी प्रकार श्रीविद्या, श्रीगुरु, श्रीसूक्त क्या है ? उनका स्वरूप क्या है ? उसका तत्व क्या है ? यह सब श्री गुरु-मुख द्वारा प्राप्त करके श्रीपुरं इत्यादि का रहस्य जानना चाहिये। श्रीचक्र की पूजा करनी चाहिये।

श्रीविद्या के जप करना चाहिये। श्रीगुरु का ध्यान करना चाहिए। श्री सूक्त का पारायण अर्थ के साथ करना चाहिए। इन सब को निश्चित मन से क्रमानुसार करने वाले को 'श्री विद्योपासक' कहा जाता है। इस प्रकार न करने वाले को 'श्री विद्योपासक हूँ' ऐसा मूर्खता वश कहते हैं। "मुझे महान् पुरुष के पास से दीक्षा मिली है अतः मुझे श्रीविद्या से सम्बन्धित सब विषय ज्ञात हैं।" इस प्रकार कहने वाले वास्तव में श्रीविद्योपासक द्वारा लिखित विषयों की अवहेलना करके स्वयं के नाम को, स्वयं के गुरु के नाम को तथा स्वयं के माता-पिता के नाम को कलंक लगाते हैं।

वास्तव में श्रीपंचकम् में वर्णित विषय पर मैंने महान् बनने के हेतु से नहीं लिखा है, अपितु इस विषय, तत्व इत्यादि को न जानने वालों के लिए तथा आत्म सन्तोष के लिए इन पांच विषयों पर संक्षेप में लिख रहा हूं। इन विषयों में भूलें होंगी। अशुध्दि हो अथवा भूलें हों तो विषय के ज्ञाता मुझे क्षमा करके सही मार्ग दर्शन देंगे। "यह सब तो मुझे अच्छी तरह ज्ञात है। इसमें इन्होंने विशेष क्या लिखा है?" इस प्रकार कहने वाले मेरा दोष निकालेंगे. ऐसे अज्ञानी का मुझे भय नहीं है। पंचतीर्थ के तट पर रहने वालों के पाँच महापाप नष्ट होते हैं वैसे ही श्रीपंचक स्वरूपिणी, कामकोटि पीठाधिपति जगत्गुरु-स्वरूपिणी, जय प्रदान करने वाली, श्री चिदानन्दामृत तत्व श्री कामाक्षी की परिपूर्ण कृपा से श्री पंचक का जितना ज्ञान मुझे है, लिखता हूं।

श्रीपुरं

श्रीः का अर्थ ऐश्वर्य (ईश्वरत्व) 'धन' 'ज्ञान' मोक्ष होता है। इन पांच श्रीपंचक की एक-एक की पृथक-पृथक् उपासना करने से सब प्राप्त होता है। किन्तु श्रीविद्योपासक का यह धर्म है कि इन पांचों तत्वों को अच्छी तरह से जानकर उपासना करनी चाहिए। उपासना करते समय साधकों के लिए ये पाँचों प्रधान विषय हैं। इनमें से एक भी न्यून हो तो वह उपासना अपूर्ण कहलावेगी।

प्रथम 'श्री पुरं' अर्थात् क्या ? श्रीपुरं अर्थात् स्वर्ण के समान महामेरु पर्वत के मध्य शिखर पर नीचे दर्शायी गई रचना के अनुसार बना हुआ नगर १. अमृताम्भो निधि २. रत्नदीप ३. नानावृक्ष महोद्यान ४. कल्प वाटिका ५. संतान वाटिका ६. हरिचन्दन वाटिका ७. मंदार वाटिका ८. पारिजात वाटिका ९. कदंब वाटिका १०. पुष्पराग वाटिका ११. पद्मराग रत्नप्राकार १२. गोमेदक रत्नप्राकार १३. वज्र रत्नप्राकार १४. वैडूर्य रत्नप्राकार १५. इन्द्रनील रत्नप्राकार १६. मुक्ता रत्नप्राकार १७. मरकत रत्नप्राकार १८. विद्रुम रत्नप्राकार १९. माणिक्य मंडप २०. सहस्र स्तम्भ मंडप २१. अमृत वापिका २२. आनन्द वापिका २३. विमर्श वापिका २४. बालातपोद्गारा २५. चंद्रिकोद्गारा २६. महाश्रृंगार परिघ २७. महापद्माटवी २८. चिन्तामणिमय गृहराज २९. पूर्वाम्नाय-पूर्वद्वार ३०. दक्षिणाम्नाय दक्षिणद्वार ३१. पश्चिमाम्नाय-पश्चिमद्वार ३२. उत्तराम्नाय-उत्तरद्वार ३३. रत्न प्रदीपवलय ३४. मणिमय सिंहासन ३५. ब्रह्ममयैक मंचपाद

३६. विष्णु मयैक मंचपाद ३७. रुद्रमयैक मंचपाद ३८. ईश्वर मयैक मंचपाद ३९. सदाशिव मयैक मंचफलक ४०. हंसतूलिका तल्प ४१. हंसतूलिका महोपधान ४२. कौसुम्भास्तरण ४३. महावितानक ४४ महामाया यवनिका।

उपरोक्त रचना के अतिरिक्त भी इस नगर में अत्यन्त विस्तार भरा है। यह जानने के लिए "ललितोपाख्यान" तथा "श्री त्रिपुरा रहस्य माहात्म्य खंड" देखना चाहिए। उसी तरह क्रोधभट्टारक की आर्या द्विशति' भी देखने योग्य है।

इस "श्रीपुरं" में सिद्धलोक, साध्यलोक, गधर्वलोक, ऋषिलोक, दिग्पाललोक, इन्द्रादि देवगण, योगिनी, रुद्रलोक, वाराही, श्यामला इत्यादि अंगोपांग प्रत्यंग देवता, पराभट्टारिका श्री ललिताम्बा श्री राजराजेश्वरी श्री महात्रिपुरसुन्दरी के साथ अंबा की पुत्री बाला तथा अंगोपांग प्रत्यंग देवता, अश्वारूढ़ा, अन्नपूर्णा, नवाक्षरी बाला, सम्पत्करी आदि भिन्न-भिन्न देवताओं के स्थान हैं। विस्तार भय से यहाँ नहीं बताया है।

श्रीचक्रं

पूर्वोक्तानुसार चिन्तामणि गृहराज में श्रीचक्र का स्थान है। श्रीचक्र की चर्चा—यह श्रीचक्र कुंकुम-सिन्दूर से आलेखित करके योगियों को इसकी पूजा करनी चाहिये। अन्य मनुष्यों को स्फटिक, रत्न, सुवर्ण, रजत, ताम्र अथवा शिला द्वारा योग्य माप में बनाकर पूजन करने से लक्ष्मी, कान्ति, यश, धन पुत्रादि, आरोग्य, दीर्घायु इत्यादि की प्राप्ति होती है।

स्फटिक में श्रीचक्र बनाकर पूजा करने से परमसिध्दि प्राप्त होती है। इस यंत्र की शास्त्रीय पध्दति अनुसार प्राणप्रतिष्ठा एक बार करवाना पर्याप्त है अन्य व्यक्ति पूजन करें तो भी पुनः प्रतिष्ठा नहीं करवानी पड़ती है। स्वर्ण में से यह यंत्र बनाकर शास्त्रीय ढंग से प्राण प्रतिष्ठा करके पूजा करने से राजा इत्यादि भी वश में हो जाते हैं। पूजन करने वाले को जीवन पर्यन्त श्रीचक्र का सान्निध्य रहता है। श्रीचक्र अन्य व्यक्ति के पास जावे तो पुनः उसकी प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

रजत में श्रीयंत्र बनाकर शास्त्रीय ढ़ंग से प्राण प्रतिष्ठा करके पूजन करने से आयुष्य, आरोग्य, कांति इत्यादि की प्राप्ति होती है। बत्तीस वर्ष पश्चात् उसकी पुनः प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

ताम्र में श्रीयंत्र बनाकर शास्त्रीय ढ़ंग से प्राण-प्रतिष्ठा करके पूजन करने से सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त होता है। बारह वर्ष पश्चात् पुनः उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

भोजपत्र में श्रीयंत्र बनाकर शास्त्रोक्त पद्धति से प्राण-प्रतिष्ठा करके पूजन करने से छः वर्ष तक उसमें अंबा का सान्निध्य रहता ।

शिला में श्रीयंत्र बनाकर शास्त्रोक्त पद्धति से प्राण-प्रतिष्ठा करके पूजन करने से बारह वर्ष तक उसमें अंबा का सान्निध्य रहता है। इस तरह पूजा करने वाले हर प्रकार से सुखी रहते हैं।

माणिक्य, गोमेदक, मरकत इत्यादि रत्नों में श्रीचक्र बनाकर शास्त्रोक्त पद्धति से प्राण-प्रतिष्ठा करके पूजन करने वालों को क्रम से राज्य भोग एवं ऐश्वर्य प्राप्त होता है। सर्वशत्रु का नाश होता है।

त्रिलोह में श्रीचक्र बनाने के लिए चाँदी १६ भाग, तांबा १२ भाग, सोना १० भाग लेकर श्रीचक्र बनाकर शास्त्रोक्त पद्धति से प्राण-प्रतिष्ठा करके पूजन करने वाले को शांति, पुष्टि, शत्रुनाश, आरोग्य इत्यादि प्राप्त होता हैं।

यह श्रीचक्र प्रसार वेध से तीन प्रकार का होता है। ऐसा 'लक्ष शाधन' ग्रन्थ में वर्णित है।

एक पद्धति में भूपुर से क्रमोन्नत ढंग से बिन्दु पर्यन्त आलेखित करते हैं। इसे मेरु कहते हैं। दूसरी पद्धति में क्रमोन्नत उर्ध्वरेखा तक बनाया जाता है। समान ढंग से अधोरेखा तक बनाना यह तीसरी पद्धति है। ऐसा तंत्रो में कहा गया है। विस्तार के भय से यहाँ अधिक नहीं लिखा है।

गुरु परम्परा के अनुसार गुरु, ज्येष्ठ, पिता द्वारा प्राप्त श्री यन्त्र सप्रमाण नहीं होने पर भी अच्छा फल देता है।

सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम, संहारक्रम इत्यादि तीन पद्धतियाँ हैं। भूमि पर सफेद रंग (चाँवल का आटा) हल्दी, सिन्दूर, हरे रंग (अति केरेय) एवं विल्व को सुखाकर खाड़ने से हरा रंग बनता है, एवं शालि के छिलके के चूर्ण से श्रीचक्र आलेखित करके प्रत्येक त्रिकोण में रंग भरकर सुन्दर अलकारिक बनाकर पूजन करने से अच्छा फल प्राप्त होता है।

शीशे, लोहे, कांसे. लकड़ी के पटिये, दीवाल एवं कपड़ों पर श्रीचक्र बनाकर पूजन करने से अच्छा फल नहीं मिलता है।

तंत्रों में— श्रीचक्र के अनेक नाम बताये गये हैं। यह सब माप में बताना संभव नहीं। श्री देवीस्वरूप भास्करराय की सेतुन्वध पुस्तक में वहुत प्रकार के नाम बताये हैं। उनमें से एक प्रमाण यहाँ बताया है। यह मेरे श्री गुरुनाथ ने मुझे बताया है, वह नीचे लिखित प्रमाण में मैंने आलेखित किया है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं के गुरु के निर्देशानुसार प्रमाण में बनाना चाहिये। क्योंकि तंत्रो में अनेक प्रकार के नाम बताये हैं। प्रत्येक माप में से अपने गुरु द्वारा निर्देशित प्रमाण ही योग्य है।

"स्तुतो मे गंगावल्ली स्तुतेति"

स्तु= ६, तो= ६, मे= ५, गं= ३, गा= ३, व= ४, ल्ली=३, स्तु= ६, ते= ६, ति=६। इस माप से ही ४३ त्रिकोण वनते हैं। श्रीचक्र ९६ अंश का है। बिन्दु से नीचे और ऊपर की ओर (दोनों ओर) ४८ अंश हैं। १ अगुली=१ अंश, इस प्रकार ९६ अंश अंगुली प्रमाण श्रीचक्र का होता है। इस तरह प्रत्येक व्यक्ति अंश का माप अपनी इच्छानुसार ले सकता है। शिल्पशास्त्र में कितने ही माप दर्शाये

गये हैं। प्रथम चक्र तीन चतुरस्र से बनाया जाता है। ये तीनों चौरस रेखा तीन अंश लेनी चाहिए। इसे 'भूपुरम्' कहते हैं। इसके बाद तीन वलय (गोलाकार) उसके बाद षोडशदल एवं उसके वाद अष्टदल। इन दोनों के बीच मर्यादावृत्त (गोलाकार) रहता है। उसी प्रकार अष्टदल और चक्र के ४३ कोणों के वीच मर्यादा-वृत्त रहता है। इसके अतिरिक्त चतुरस्र एवं षोडशदल के मध्य तीन वृत्त (गोलाकार) दिखाये जाते हैं। इसके साथ ही षोडशदल एवं वलयत्रय (गोलाकार) के मध्य एक षोडशदल का मर्यादा वृत्त होता है। कुछ विद्वान मर्यादा वृत्त के साथ ही तीन वृत्त बताते हैं, वह योग्य नहीं है। ऐसा मेरा अभिप्राय है। अर्थात् इस मर्यादा वृत्त के सहित चार वृत्त (गोलाकार)एवं प्रत्येक के बीच दो अंश का माप होना चाहिए। इस तरह छः अंश हों। षोडश-दल का माप छः अंश का है। अष्टदल का प्रमाण छः अंश का है। इसके ऊपर नीचे के चौदह त्रिकोण से ऊपर के भाग पर बिन्दु पर्यन्त ४८ अंश रखना चाहिए। जिसका प्रमाण ऊपर से १४ त्रिकोण ६ अंश, दस त्रिकोण ६ अंश, अष्टार त्रिकोण ३ अंश, त्रिकोण ३ अंश। इसी प्रकार नीचे के १४ त्रिकोण ६ अंश, दशार कोण ६ अश, दितीय दशार ६ अंश, त्रिकोण ३ अश, विन्दु ४ अंश, –इस प्रकार माप है।

बिन्दु श्रीचक्र के बराबर मध्य नहीं आता है; किन्तु नीचे के भाग के त्रिकोण से २५ अंश, ऊपर के भाग के त्रिकोण से २३ अंश ऊपर बिन्दु आता है। तब ही श्रीचक्र का प्रमाण मिलता है। वैसे ही डमरू का प्रमाण भी बराबर मिलता है। यदि डमरू वरावर न बने तो मछली की पूँछ का दोष आ जावे, जिससे श्रीचक्र वरावर प्रमाण में न कहलाये।

श्रीचक्र के देवताः—प्रथमावरण-भूपुरं—तीन समान चोरस रेखा में प्रथम समचोरस रेखा सफेद वर्ण, दूसरी समचोरस रेखा अरुण

वर्ण एवं तीसरी समचोरस रेखा पीत वर्ण की होती है। भूपुरं अर्थात् भूतत्वं, प्रकृति=लकार।

प्रथम श्वेत रेखा में अणिमासिद्धि इत्यादि दस देवता, दूसरी लाल रेखा में ब्राह्मी इत्यादि अष्ट देवता, तीसरी पीली रेखा में सर्वसंक्षोभिणी इत्यादि दस देवता का पूजन करना चाहिए। इस प्रथम चक्र को त्रैलोक्यमोहनचक्र कहते हैं। उसकी योगिनी प्रकटा एवं त्रिपुराचक्रेश्वरी नामक कहलाती है।

द्वितीयावरणं—षोडशदल-श्वेत वर्ण सकार प्रकृति एवं चन्द्र की षोडश कला के समान लगता है। इसके देवता कामाकर्षिणी आदि सोलह देवता हैं। इसकी योगिनी गुप्ता एवं त्रिपुरेशी चक्रेश्वरी कहलाती है। इस द्वितीय आवरण का नाम सर्वाशापरिपूरक चक्र कहलाता है।

तृतीयावरण-अष्टदल—जपा कुसुम के जैसा यह आवरण है। अष्टमूर्ति शिवस्वरूप देवता है। हकार प्रकृति, अनंगकुसुमादि अष्टदेवता है। इसकी योगिनी गुप्ततरा, त्रिपुरसुन्दरी चक्रेश्वरी है। चक्र का नाम सर्वसंक्षोभण चक्र है।

चतुर्थावरण चतुर्दश त्रिकोण—(चतुर्दशार) इस आवरण का वर्ण अनार के फूल के समान होता है। ईकार प्रकृति चौदह महामायास्वरूप देवता है। सर्वसंक्षोभिणी से प्रारम्भ होने वाले चौदह देवता हैं। संप्रदाययोगिनी त्रिपुरवासिनी चक्रेश्वरी एवं चक्र का नाम सर्व सौभाग्य दायक चक्र है।

पंचमावरण-बहिर्दशार—दशार त्रिकोण सिंदूर वर्ण का है। एकार प्रकृति है। दशावतार विष्णुस्वरूप देवता है। दस त्रिकोण-सर्व-

सिद्धि प्रदा से प्रारम्भ होकर दस देवता हैं। कुलोत्तीर्णं योगिनी-त्रिपुरा चक्रेश्वरी है। चक्र का नाम सर्वार्थ साधक चक्र है।

षष्ठ आवरण-अन्तर्दशार त्रिकोण—इस द्वितीय दशार त्रिकोण का वर्ण जासूद (जपा-कुसुम) पुष्प के समान है। प्रकृति रकार है। अग्निस्वरूप दस कला-अन्तर्दशार-सर्वज्ञा आदि दस देवता हैं। निगर्भ-योगिनी-त्रिपुर मालिनी चक्रेश्वरी है। सर्वरक्षाकरचक्र इस चक्र का नाम है।

सप्तमावरण-अष्टार—इस चक्र में अष्ट कोण हैं। पद्मराग-लाल वर्ण है। प्रकृति ककार है। अष्टमूर्ति स्वरूप कामेश्वर देवता-अष्टार के वशिनी आदि आठ देवता हैं। रहस्य योगिनी त्रिपुरा सिद्धि चक्रेश्वरी है। इस चक्र का नाम सर्व रोग हर चक्र है।

अष्टमावरण-त्रिकोण—यह त्रिकोण बंधूक पुष्प के समान नीले-लाल रंग का होता है। नाद प्रकृति है। पश्चिम में कामेश्वर-कामेश्वरी, बाण, उत्तर में धनु-पाश, अंकुश, त्रिकोण गुण त्रय प्रधान होने से शक्तिस्वरूप तीन रेखा में कामेश्वरी इत्यादि तीन देवता हैं। महात्रिपुर सुन्दरी अति रहस्य योगिनी त्रिपुराम्बा चक्रेश्वरी है। चक्र का नाम सर्वप्रसिद्धिप्रद चक्र है।

नवमावरण-बिन्दु—इसकी प्रकृति परब्रह्मस्वरूपमान देवता है। श्री महात्रिपुर सुन्दरी परापरातिरहस्य योगिनी श्री महात्रिपुर सुन्दरी चक्रेश्वरी एवं इस चक्र का नाम सर्वानन्दमय चक्र है।

इन आवरण देवता के विशेष तत्व जानने के लिये मेरे गुरुनाथ द्वारा लिखे गये–'सपर्यावासना', 'कामकला विलास' वरिवस्या रहस्य (तामिल एवं अंग्रेजी में लिखे गये हैं) ग्रन्थ देखें।

पंच-पंचिका—बिन्दु चक्र के ऊपर सिंहासन स्वरूप एक पीठ की भावना करके मध्ये वायु आदि चार कोने पर एक, एक कोने की पूजन करें।

प्रथम पंचिका—(१) श्री विद्या लक्ष्मी, (२) महालक्ष्मी, (३) श्री महालक्ष्मी (४) चित्-शक्ति लक्ष्मी, (५) सर्व साम्राज्य लक्ष्मी—इस प्रकार पंचमहालक्ष्मी का पूजन करना चाहिए।

द्वितीय पंचिका—(१) श्री विद्या कोशाम्बा, (२) परंज्योति कोशाम्बा (३) परानिष्कला कोशाम्बा, (४) अजपा कोशाम्बा, (५) मातृका कोशाम्बा—इस प्रकार पांच कोशाम्बा का पूजन करें।

तृतीय पंचिका—(१) श्रीविद्या कल्पलताम्बा, (२) त्वरिता-कल्पलताम्बा (३) पारिजातेश्वरी कल्पलताम्बा, (४) त्रिपुरा कल्पलताम्बा, (५) पंचवाणेश्वरी कल्पलताम्बा—इस प्रकार पाँच कल्पलताम्बा का पूजन करें।

चतुर्थ पंचिका—(१) श्रीविद्या कामदुधाम्बा, (२) अमृतपीठेश्वरी कामदुधाम्बा, (३) सुधांशु कामदुधाम्बा, (४) अमृतेश्वरी कामदुधाम्बा (५) अन्नपूर्णा कामदुधाम्बा—इस प्रकार पांच काम दुधाम्बा पूजन करें।

पाँचवीं पंचिका—(१) श्रीविद्या रत्नाम्बा, (२) सिद्धलक्ष्मी रत्नाम्बा, (३) राजमातंगी रत्नाम्बा, (४) भुवनेश्वरी रत्नाम्बा, (५) वाराही रत्नाम्बा—इस प्रकार पाँच रत्नाम्बा का पूजन करें।

षड्दर्शन—

१. तारा देवता-बौद्ध दर्शन

२. ब्रह्मा देवता-वैदिक दर्शन

३. रुद्र देवता-शैव दर्शन

४. सूर्य देवता-सौर दर्शन

५. विष्णु देवता-विष्णु दर्शन

६. भुवनेश्वरी देवता- शाक्त दर्शन

इस प्रकार षड्दर्शन देवता का पूजन करना चाहिए।

षडाधार-- १. शाकिनी योगिनी सहित
गणनाथ का मूलाधार चक्र में पूजन करना चाहिए।
२. काकिनी योगिनी सहित
ब्रह्मा का स्वाधिष्ठान चक्र में पूजन करना चाहिए।
३. लाकिनी योगिनी सहित
विष्णु का मणिपुर चक्र में पूजन करना चाहिए।
४. राकिनी योगिनी सहित
सदाशिव का अनाहत चक्र में पूजन करना चाहिए।
५. डाकिनी योगिनी सहित
जीवेश्वर का विशुद्ध चक्र में पूजन करना चाहिए।
६. हाकिनी योगिनी सहित
परमात्मा का आज्ञाचक्र में पूजन करना चाहिए। इसके अति-रिक्त षडाम्नाय, सप्तविंशति रहस्य, षडन्वी शांभवी इत्यादि देवता का पूजन समयानुसार करना चाहिए।

श्रीविद्या

श्रीचक्र में बिन्दु के मध्य में रहने वाली शक्ति को श्रीविद्या कहते हैं। यह विद्या मंदिर १५ अक्षर का है। पुरुष मंत्र भी तंत्र कहलाता है। वल्लभ गणपति को विद्या कहते हैं। श्री विद्या के अनेक भेद हैं। बाला से प्रारम्भ होकर महाषोडशी पर्यन्त सब श्रीविद्या है। बाला, पंचदशी, षोडशी, सौभाग्य पंचदशी विद्या, सौभाग्य षोडशी विद्या, श्री महाषोडशी—ऐसे अनेक भेद हैं। यह विद्या अन्य मंत्रों के समान स्पष्ट किये बिना संज्ञा में उपनिषद् एवं तंत्रों में बताई गई है।

इस पंचदशी विद्या के अक्षर की पुनरुक्ति को न गिनते हुए हिसाब करें तो नव (९) अक्षर होते हैं। उनका नाम मेरुमंत्र हैं।

श्री विद्या में हादि विद्या, कादि विद्या, सादि विद्या नामक तीन भेद हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिणा मूर्ति मत, हयग्रीव मत, आनन्द भैरव मत-ऐसे तीन मत हैं। 'वेद में कर्मकांड, भक्तिकांड एव ज्ञानकांड हैं। इसी तरह तंत्र में तीन कांड हैं। जैसा कि आनन्द भैरव मत-कर्मकांड, हयग्रीवमत-भक्तिकांड. दक्षिणा मूर्ति मत-ज्ञानकांड है। इस पंचदशी विद्या में थोड़ा-थोड़ा भेद है। मनु, चन्द्र, कुवेर, लोपामुद्रा, मन्मथ अगस्तस्य, नन्दीकेश्वर, सूर्य, विष्णु, स्कन्द, शिव एवं दुर्वासा-इन १२ महान संतो ने उपासना करके श्री विद्या की सिद्धि प्राप्त की है। मनु विद्या के १८ अक्षर हैं। चन्द्र विद्या के २२ अक्षर हैं। कुबेर विद्या के २२ अक्षर हैं। लोपामुद्रा की उपासना विद्या के १७ अक्षर हैं। मन्मथ

विद्या के १५ अक्षर हैं । अगस्त्य विद्या के १५ अक्षर हैं । नन्दीकेश्वर विद्या के १५ अक्षर हैं । सूर्य विद्या के १५ अक्षर हैं । विष्णु विद्या के २२ अक्षर हैं । स्कन्द विद्या के १८ अक्षर हैं । शिव की उपासना विद्या के २८ अक्षर हैं । दुर्वासा विद्या के १५ अक्षर है ।

वाला मंत्र में ३ अक्षर अथवा ६ अक्षर महान् पुरुष देते हैं। वाला के १४ प्रकार के भेद तंत्र में बताये गये हैं। पंचदशी के १५ अक्षर, षोडशो के १६ अक्षर, सौभाग्य पंचदशी के १८ अक्षर, सौभाग्य षोडशी के १९ अक्षर, महाषोडशी के द्वितीय वर्ण के साथ १६ अक्षर होते हैं । अलग-अलग अक्षर गिनें तो २८ अक्षर होते हैं। इस तरह महिमा भरी पंचदशी को श्री विद्या कहते हैं ।

यह विद्या श्री गुरुमुख द्वारा प्राप्त करनी चाहिये । पुस्तकें देख कर ज़प करने से अच्छा फल प्राप्त नहीं होता हैं, अपितु विरुद्ध फल प्राप्त होता है ।

श्री विद्या के पूजन में तीन भेद हैं। यथा परापूजा, परापरा-पूजा, अपरापूजा। परापूजा यह ज्ञान है । परापरापूजा यह भक्ति है । अपरापूजा यह कर्म है।

"इस विद्या के फल की ओर दृष्टि रखकर उपासना करने से सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। फल की अपेक्षा रखे बिना उपासना करने से जल्दी सिद्धि प्राप्त होती है"। ऐसा "सौभाग्य लक्ष्मी" उपनिषद् में में कहा गया है ।

"निष्कामानामेव" श्री विद्या सिद्धिः । न कदापि सकामाना-मिति" । पंचदशी विद्या के देवता ललिताम्बा, महात्रिपुर सुन्दरी, कामाक्षी, राज राजेश्वरी हैं । ऐसा महापुरुषों का कथन है । यह सब

देवता श्रीविद्या हैं । यह ललिताम्बा बिन्दु पीठ में कामेश्वर की गोद में बैठी हुई हैं । इन देवो की पूजा करते समय पंचदशी के जप के समय अनेक प्रकार के शरीर के न्यास कर लेने चाहिए । ऐसे ८४ न्यास हैं । इसके अतिरिक्त महाषोढ़ान्यास विशेष रूप से कर लेने चाहिये । यह महाषोढ़ान्यास प्रतिदिन किसी भी प्रकार से नियम टूटे बिना करने वाले व्यक्ति साक्षात् परमेश्वर हैं । ऐसा तंत्र बतलाते हैं । यह षोढ़ान्यास अचूक करने वाले उपासक की दृष्टि पड़ते ही हर एक प्रकार की आपत्ति शीघ्र दूर हो जाती है । ऐसे उपासक द्वारा किसी को प्रणाम नहीं किया जाता है । ऐसे उपासक मिलना अत्यंन्त दुर्लभ हैं । इस पंचदशी के जप करने वाले की महिमा का वर्णन श्री देवी स्वरूप भास्कर राय ने वरिवस्या रहस्य ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक किया है । इस विषय का वर्णन भास्कर राय जैसे महानुभाव से ही हो सकता है । साधारण मनुष्य से नहीं हो सकता है । आज के महानुभाव जब यह कहते हैं कि "श्रीविद्या के जप करने वाले उपासकों के द्वारा किसी को भी नमस्कार नहीं किया जाता है अथवा नमस्कार नहीं करेंगे ।" तब हंसी आती है । जप के तीन भाग हैं मानसिक, उपांशु एवं वाचिक । मन में जप करना मानसिक कहलाता है । ओष्ठ को हिला-कर बोले बिना जप करना उपांशु जप कहलाता है । अन्य व्यक्ति सुने इस प्रकार बोलकर जप करना वाचिक कहलाता है । मनस् एवं मंत्र यह दोनों मन धातु में अंतर्निहित है । अतः मानसिक कहलाता है । इस तरह अर्थानुसंधान द्वारा मंत्र जप करने से जल्दी सिद्धि प्राप्त होती है । अर्थज्ञान के बिना जप करने से राख में आहूति देने जैसा होता है ।

पंचदशी विद्या का लक्ष्य श्री ललिताम्बा के अंग देवता, प्रत्यंग देवता एवं उपांग देवता हैं । नवाक्षरी बाला–अंग, अश्वारूढ़ा-उपांग, अन्नपूर्णा-प्रत्यंग गिनीं जाती हैं । उसी तरह श्यामला वाराही के भी अंग, उपांग एवं प्रत्यंग देवता हैं । श्यामला देवता की लघुश्यामा अंग,

वाग्वादिनी-उपांग नकुली- प्रत्यंग देवता हैं। उसी तरह वाराही की लघुवाराही-अंग, स्वप्नवाराही, उपांग, तिरस्करणी प्रत्यंग देवता हैं।

बाला देवी अंबा की पुत्री है। श्यामला मैत्रिणी है। वाराही सेनाधिपति कही जाती है। परा यह अंबा का हृदय है। महात्रिपुर-सुन्दरी, राजराजेश्वरी ललिता के साथ अंबा का प्रभाव एवं पूजा विषयक ग्रन्थ आदिगुरु श्री दक्षिणा मूर्ति ने २४ लक्ष श्लोकों में लिखा है। उन दक्षिणामूर्ति के शिष्य दत्तात्रेय ने संक्षेप में २४ हजार श्लोकों में ग्रन्थ लिखा हो ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु अभी तक ये पुस्तकें अप्राप्य ही हैं। दत्तात्रेय द्वारा लिखित चौबीस हजार श्लोकों को उनके शिष्य परशुराम ने ३३६ सूत्रों में लिखा है। यह वर्तमान में 'परशुराम कल्पसूत्र, नाम से विख्यात है। परशुराम के शिष्य हरितायन ऋषि ने महात्रिपुर सुन्दरी की महिमा चर्या खण्ड माहात्म्य खंड एवं ज्ञान खंड इन तीन खडों में निबद्ध त्रिपुरा-रहस्य पुस्तक में लिखी है। चर्या खण्ड अनेक स्थानों पर ढूँढने पर भी मिलता नहीं है। माहात्म्य खण्ड एवं ज्ञानखंड अभी-अभी प्रसिद्ध हुए हैं। चर्याखण्ड में महात्रिपुर सुन्दरी की पूजा के विषय में लिखा हैं। माहात्म्य खण्ड में महात्रिपुर सुन्दरी के अवतार भेद की ग्यारह कथाएँ है। ज्ञान खण्ड में ज्ञान विषयक चर्चा है। यह कर्मकांड, भक्तिकांड एव ज्ञानकांड के सदृश्य है। ऊपर वर्णित महात्रिपुरसुन्दरी, कामेश्वरी अथवा ललिता यह चित्शक्ति स्त्री स्वरूप में अथवा पुरुष स्वरूप में अथवा नाम रूप के अतिरिक्त सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप है। इस तरह से ध्यान करने से यह चित् शक्ति भक्तों का रक्षण करने, भंडासुर का वध करने के लिये सगुण स्वरूप धारण करके विलास करती है।

यह भंडासुर पूर्वजन्म में एक गंधर्व था। लक्ष्मीदेवी की एक परिचारिका गंगा में स्नान करते समय प्रवाह में बहने लगी। उसे इस

गंधर्व ने बचा लिया। उस परिचारिका के वस्त्र भीगे हुए होने से गंधर्व ने उसके सर्वांग स्पष्ट देखे एवं उस पर मोहित हो गया एवं उसे फिर से पकड़ लिया। उस समय लक्ष्मी देवी की परिचारिका ऐसा देखकर गंधर्व से कहती है कि "हे गंधर्व मुझे देखकर तुझे मोहित होने की आवश्यकता नहीं है। आपत्ति के समय तूने मुझे बचाया है अतः तू मेरे लिये पिता-तुल्य है।" अतः कुदृष्टि से मुझे मत देख। ऐसा कहकर परिचारिका दौड़कर लक्ष्मीदेवी के पास जाकर बोली, हे माता मुझे बचाओ, मुझे बचाओ। लक्ष्मी देवी ने भयभीत परिचारिका एवं कामातुर गंधर्व को देखकर कहा "हे गंधर्व, मेरे लोक में रहकर राक्षस गुणवाला बनकर तू अब राक्षस का जन्म पा" ऐसा शाप दिया। इससे गंधर्व लज्जा सहित बोला—"हे माँ क्षमा करो। काम से पीड़ित होकर मैं इस स्थिति पर पहूँचा हूँ। मुझे क्षमा करो। अज्ञान से की गई भूल क्षमा करो।" इस प्रकार बहुत प्रार्थना की तब लक्ष्मी देवी ने कहा—मेरा शाप मिथ्या नहीं हो सकता। तुझे भोगना ही पड़ेगा। यह सुनकर गंधर्व ने कहा, आपके कहे अनुसार भोगना ही पड़ेगा। तब आप मुझे वरदान दें कि त्रिमूर्तिस्वरूप, भुवनेश्वरीस्वरूप, चंडिकास्वरूप सब देवों, की अधिष्ठात्री त्रिपुरा देवी के द्वारा मेरी मृत्यु हो माता "तथास्तु" कहकर अदृश्य हुई। यह गंधर्व भण्डासुर हुआ। त्रिपुरसुन्दरी ललिता का ही स्वरूप है। सहस्रनाम द्वारा आदिशेषनाग भी उनका वर्णन करने में असमर्थ हैं। ऐसे स्वरूप वाली वे हैं। चिन्तामणि गृह में श्रीचक्र के मध्य में रहकर बिन्दु पीठ में रहकर कामेश्वर की गोद में बैठी हुई यह श्री ललिता अंबिका विशेष रूप से भी अवर्णनीय है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र महेश्वर के चार पाद हैं। सदाशिव पलंग स्वरूप हैं। उसके मध्य में बैठी हुई श्री ललिता पद्मासन पर बैठी हुई हैं। राग स्वरूप पाश, क्रोध स्वरूप अंकुश मनोरूप गन्ने का धनुष्य पंचतन्मात्रं स्वरूप कमल, अशोक, आम्र, मल्लिका, नीलोत्पल-इन

पांच वाणों को हाथ में धारण किये हुए हैं। चन्द्रकला धारण किये हुए है। श्रृंगाररस स्वरूप मूर्त्ति है। उगते हुए सूर्य के लालवर्ण जैसी देह वाली है। ऐसी श्रीविद्या राज राजेश्वरी को चौसठ उपचार प्रिय हैं।

(उपचार ७२, ६४, १६, और ५ प्रकार के होते हैं।) गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य-इन पाँच उपचारों की कल्पना जप करते समय करनी चाहिए। पूजा में द्रव्य की कल्पना करने से नहीं चलता, किन्तु द्रव्य अवश्य चाहिए। गन्ध-चन्दन पृथ्वी तत्व होने से नाक में, पुष्प-आकाश तत्व होने से कान में धूप-वायु तत्व होने से नाभि में, दीप–अग्नि तत्व होने से नेत्र में, नैवेद्य-जल तत्व होने से जिह्वा में अर्पण करना चाहिये। अम्बा सगुणमूर्ति होने से ध्यान करते समय ऊपर बताये गये स्थान में पंचोपचार अर्पण करना चाहिए। चौंसठ प्रकार के उपचार का विवरण उपासक के लिये नीचे बताया गया है–

१. पाद्यं -- पैर धोना, २. आभरणावरोहणं—अलंकार गले से उतारना, ३. सुगन्धतैलाभ्यंग–सुगन्धित तेल शरीर पर लगाना, ४. मज्जनशाला-प्रवेशनं-स्नानगृह में प्रवेश ५. मणिपीठोपवेशनं-स्नानार्थं-स्नान गृह के पाटले पर बैठना, ६. दिव्यस्नानीयोद्वर्तनम्–शरीर पर सुगन्धित द्रव्यों का लेपन करना, ७. उष्णोदकस्नानं—गरम पानी से स्नान, ८. कनककलशच्युतसकलकलशाभिषेक—सुवर्ण कलश में से सब तीर्थजल द्वारा अभिषेक ९. श्वेतवस्त्र परिमाजंन–सफेद वस्त्र से शरीर पोंछना १०. अरुणदुकुलपरिधानं—लालवर्ण का रेशमी वस्त्र पहिनना ११. अरुण कुचोत्तरीय—लाल रंग की कचुकी १२. आलेप मंडप प्रवेश-सुगन्ध मण्डप में प्रवेश १३. आलेप मण्डप मणिपीठोपवेशनं -सुगन्ध मण्डप के मणिपीठ पर बैठना १४. चन्दनागुरु कुंकुममृगमद कर्पूर कस्तूरी गोरोचनादि दिव्यगन्ध सर्वांग विलेपनं-चन्दन, अगर,

केसर, पुंनाग, कपूर, कस्तूरी, गोरोचनादि दिव्य सुगन्ध का चन्दन के साथ सर्वांग में लेप करना १५. केशभारस्य कालागरुधूप–गीले बालों को काले अगरु के धूप से सुखाना १६. मल्लिका मालती जाति चंपकाशोक शतपत्रपूग कुहली-पुन्नाग-कल्हार-मुख्य सर्वर्तु कुसुममाला- मल्लिका, मालती, जाति, चम्पक, शतपत्र (कमल), सुपारी पुष्प, केले का पुष्प पुन्नाग कल्हार आदि छः ऋतुओं से सुगन्धित पुष्पों की माला अर्पण करना १७. भूषणमण्डप प्रवेशनं–अलंकार मण्डप में प्रवेश करना १८. भूषणमण्डप मणिपीठोपवेशनं–अलंकार गृह में मणिपीठ पर बैठना १९. नवमणि मुकुट–नवरत्न मुकुट धारण करना । २०. चन्द्र-शकल–चन्द्र-कला धारण करना २१. सीमन्तसिन्दूर–माँग में सिन्दूर भरना । २२. तिलक रत्न–रत्न का तिलक करना २३. कालांजन- काला काजल लगाना २४. वालीयुगल–कान में झुमकी पहिनाना २५. मणिकुण्डलयुगलं–रत्नकुण्डल कान में पहिनाना २६. नासा भरणं– नाक में नथनी पहिनाना २७. अधर यावकं–ओष्ठ पर वर्ण लगाना २८. प्रथमभूषणं–मंगल सूत्र पहिनना २९. कनक-चिन्ताकं–गले में हार पहिनाना ३०. पदकं–गले में पदक धारण करना ३१ महा पदकं- नवरत्नमय श्रीचक्र पहिनाना [ऐसा महापुरुष कहते हैं।] ३२. मुक्ता-वली–मोती की माला पहिनाना ३३. एकावली– एक कडी की [नक्षत्र की] माला पहिनाना । ३४. छन्नीवरं - एक विशेष अलंकार पहिनाना ३५. केयूर युगल चतुष्टयम्- हाथ में बाजुबन्ध पहिनाना ३६ वलयावली – चूडियाँ पहिनाना ३७. उर्मिकावली- अंगूठियाँ पहिनाना ३८. कांची-दाम-कमर की करधनी ३९. कटिसूत्र - कंदोरा ४० सौभाग्यावरण (तामिल में अराईमुडी) कंदोरे में पान के आकार का अलंकार धारण करना ४१. पाद कटकं-पैर का आभूषण ४२. रत्ननूपुर - रत्न के झाँझर ४३. पादांगुलीयकम् - पैर की ऊँगलियों की अंगूठियाँ ४४,

एककरेपाशं - एक हाथ में पाश ४५. अन्यकरे अंकुशं - दूसरे हाथ में अंकुश ४६. इतर करे पण्ड्रेक्षुचापं - अन्य हाथ में गन्ने का धनुष (सफेद, लाल, पीला नहीं अपितु तीन रंग वाले गन्ने का धनुष) ४७. अपर करे पुष्पवाण - अन्य हाथ में पुष्पबाण धारण करना (अरविन्द, अशोक, आम्र, मल्लिका, नीलोत्पल) ४८, श्रीमन्माणिक्य पादुके-रत्न पादुका धारण करना ४९. स्वसमान वेषभिरावरणदेवताभिः सह महा-चक्राधिरोहणं - स्वयं के समान ही वेष धारण किये हुए देवताओं सहित, सर्व आवरण देवताओं सहित महाचक्र में अपने-अपने स्थान पर आरूढ़ होना ५०. कामेश्वरांकपर्यंकोपवेशनं - कामेश्वर की गोद में बायीं तरफ बैठना ५१. अमृतासवचषकं - अमृतासव से भरा हुआ पात्र प्रदान करना ५२. आचमनीयं—आचमन करना ५३. कर्पूर-वीटिकां—पान (इलायची, लोंग, भीमसेनी कपूर, केशर, कस्तूरी, नाग-केशर, जायफल, जातिपत्र, सुपारी, खोपरा, सोंठ, करंगाली—इन सब का मसाला करके चूना मिलाकर मेरू जैसा पान बनाना, उसे कर्पूर वाटिका कहते हैं।) ५४. आनंदोल्लास विलासहासं-सन्तोषपूर्ण हास्य ५५. मगलारातिक - मंगल आरती ५६. छत्रं-छत्र ५७. चामर युगल - चामर युगल ५८. दर्पणं - कांच ५९. तालवृन्तं - ताडपत्र का पंखा ६०. गंध - चन्दन ६१. पुष्प ६२. धूप ६३. दीप ६४. नैवेद्य - यह चौंसठ उपचार महासाम्राज्य चक्रवर्तिनी अम्बा के लिये ही हैं अन्य कोई देवता के नहीं हैं।

यह ललितांबिका परचिति स्वरूपा होने से हर एक में स्थित है। षोडश तिथि नित्या स्वरूप स्थित हैं। पंचायतन देवता स्वरूप भी हैं। पंचायतन देवता ही पंचभूत हैं। पंचभूत के बिना कोई भी प्राणी जिन्दा नहीं रह सकता है। जगत की सृष्टि करके उसमें प्रवेश करके यह चित् शक्ति पंचभूत स्वरूप स्थित है। ब्रम्ह से दूसरे स्थान पर

पंचभूत है। ब्रम्ह-शक्ति होने से आवश्यकता पड़ने पर अम्बा पंचभूत द्वारा प्राप्त की जा सकती है। पंचायतन ही चित्‌शक्ति होने से अम्बा के पाँच स्थान हैं। अतः पूजा अद्वैत ज्ञान की इच्छा रखने वालों को अवश्य करनी चाहिए।

वास्तव में ये पंचायतन देवता सगुण एवं निराकार स्वरूप में स्थित हैं। महेश्वर आकाश-भूत स्वरूप, हाथ-पैर इन्द्रियों के बिना, लिंग स्वरूप प्रकट हुए हैं। यह लिंग नर्मदा नदी में मिलते हैं। इसी तरह वायु स्वरूप अम्बा अवयव बिना पीतवर्ण जैसे धातु में स्थित हैं। यह कालाश (कालाहस्ती) में तामिलनाडु में स्वर्णमुखी नदी में मिलते हैं। तेज स्वरूप आदित्य अवयवों के बिना स्फटिक स्वरूप स्थित हैं। गुजरात में खम्भात, दक्षिण देश में तंजाबुर वल्लम् में स्फटिक मिलते हैं। जलभूत स्वरूप विष्णु अवयवों के बिना शालिग्राम स्वरूप हैं। ये नेपाल में गंडकी नदी में से मिलते हैं। भूमिस्वरूप गणपति अवयव बिना शोणभद्र नामक पत्थर स्वरूप में मिलते हैं। यह शोणभद्र मध्य-प्रदेश में नर्मदा किनारे नेमावर में तथा गुजरात में सिनोर किनारे मिलते हैं। शोण नदी में भी मिलते हैं ये पंचभूत जब नाम रूप बिना ब्रह्म में से बाहर आते हैं, तब गुणों के बिना दिखते हैं। गुण मिल जाने से नाम रूप मालूम होते हैं। पर ब्रह्म होने से गुणों और नाम रूप बिना ब्रह्म कहलाते हैं। इससे पंचभूत पंचायतन देवता सगुण तथा निराकार ज्ञात होते हैं। इस कारण से अद्वैत जानने वालों को प्रतिदिन पंचायतन देवता की पूजा करनी चाहिये। स्मार्त कर्म में वर्ष, मास, पक्ष, तिथि नक्षत्र, करण, योग, दिन इत्यादि का संकल्प करना पड़ता है। उसी तरह श्रीविद्या में श्री उपासक को जप-पूजा इत्यादि करते समय देवी-मान अष्टांग के अनुसार सकल्प करना चाहिए। अष्टांग का विस्तार-

युग, परिवृत्त, वर्ष, मास, दिन, नित्या, वासरः घटिकोदय इस तरह आठ अंग हैं। छत्तीस युग हैं। एक युग के ३६ परिवृत्त हैं। एक परिवृत्त के ३६ वर्ष हैं। १ वर्ष में १६ महिने हैं । एक महिने के ३६ दिन हैं। ३० दिन की ३० नित्याएँ है, जिनको दिन नित्या कहते है एवं तिथिनित्या भी कहते हैं। प्रत्येक पचांग में दिन नित्या तिथि के अनुसार ली जाती हैं। तिथिनित्या देवी अष्टांग का भाग नहीं हैं। एक मास=३६ दिन होते हैं। चार सप्ताह होते हैं। एक सप्ताह में ९ दिन हैं इस प्रकार अष्टांग होते हैं। पूजा-जप करते समय प्रत्येक दिन का देवी अष्टांग अनुसार युगादि संकल्प करना चाहिए। इसका विस्तार "घटिकोदय से काल शक्ति विलास" इत्यादि पुस्तकों में देखना चाहिये। मेरे श्रीगुरुनाथ ने "श्रीविद्यानित्याह्निक" ग्रन्थ में यह अष्टांग कैसे बनाना यह बताया है।

दीक्षा

श्री विद्योपासक को अनुभवी गुरु द्वारा दीक्षा लेनी चाहिए। दीक्षा के बिना यह उपासना काम की नहीं है। इस प्रकार तंत्र में बताया गया है। यह दीक्षा ३२ प्रकार से ली जाती है, ऐसा बताया गया है। परशुराम कल्पसूत्र में—क्रिया दीक्षा, शक्ति दीक्षा, शांभवी दीक्षा यह तीन दीक्षा बताई गई हैं। अनुभव प्राप्त किये हुए, सिद्धि प्राप्त किये हुए, अक्रोधी, धन की आशा नहीं रखने वाले, अनेक तंत्रो के तत्वों को जानने वाले, अद्वैत में स्थिर बने हुए शिष्यों के सन्देह को दूर करने में समर्थ, पूजा इत्यादि विषयों के ज्ञाता गुरु के पास से दीक्षा प्राप्त करना चाहिये। कितने ही लोग दीक्षा बिना ही मंत्र प्राप्त करके उपासना करते हैं। इस श्रीविद्या उपासना में श्री गुरु पादुका का स्मरण बहुत प्रमुख है। श्री गुरु पादुका के साथ दीक्षा लेकर श्री श्री विद्या जप-पूजा आदि करना चाहिये। इस प्रकार तंत्रशास्त्र-ज्ञाताओं द्वारा कहा गया है। श्री विद्या के उपासक को श्री गुरु परंपरा का ज्ञान मुख्यत; रहना चाहिये। श्री गुरु, परमगुरु, परमेष्ठि गुरु-इन तीनों के मंत्रों को पहले करके फिर जप-पूजा आदि करना चाहिए।

एक-एक देवता के उपनिषद्, कवच, हृदय मालामंत्र, सहस्र-नाम—ये ५ अंग हैं। श्रीविद्या का ललिता सहस्रनाम ललिताम्बा के अतिरिक्त अन्य देवता के लिये नहीं होता है। यह ललिताम्बा सहस्र-नाम केवल पंचदशी का उपदेश प्राप्त किये हुए व्यक्ति ही कर सकते हैं। बाला मंत्र का उपदेश हुआ हो तो दूसरे पक्ष के रूप में यह सहस्र-

नाम पढ़ सकते हैं। ऐसा महान् पुरुषों का कथन है। इस विषय में विशेष जानकारी हेतु-पूजा, वर्ष में हरेक महीने की पूजा, परशुराम कल्पसूत्र में एवं दूसरी तंत्र पुस्तकों में देखें। चैत्र पूर्णिमा के दिन दमन (भाजी जैसे हरे पत्तों की सुगन्ध वाली होती है।) से पूजन करना माताजी को विशेष प्रिय है। जब परमेश्वर ने कामदेव को भस्म किया तब रतिदेवी अंबा के पास आकर विलाप करने लगीं। उनके अश्रुओं का प्रवाह जमीन पर पड़ा। उसमें से उत्पन्न हुआ वह दमन।

अम्बा का लक्षार्चन करते समय सुगन्धदार फूलों, दमन, बिल्व, लाल फूलों से पूजन होता है। हरिद्रा कुंकुम से सहस्त्रार्चन नहीं होता है। केशर से लक्षार्चन किया जाता है। जिन पुष्पों से लक्षार्चन किया हो उनके १/१० भाग से होम करना चाहिए। लक्षार्चन हर रोज सम संख्या से करनी चाहिए। सहस्त्रनाम से अर्चन करते वक्त एक जाति के पुष्पों से करना चाहिए। षोडश नित्या के सोलह ब्राह्मणों (श्री उपासकों) को तथा आठ श्री उपासक सुवासिनी तथा एक कुमारी अथवा यथाशक्ति एक बटुक (क्षेत्रपाल) की पूजा करनी चाहिए। (बटुक का अर्थ जिसने उपवीत धारण किया हो किन्तु परिणीत न हो वह बटुक कहलाता है।) इन सबको वस्त्र, दक्षिणा इत्यादि यथाशक्ति देकर हर एक की पूजा करनी चाहिए। इससे अधिक श्रीविद्या पूजा विधान की जानकारी स्वयं के गुरु-मुख द्वारा तंत्र के अनुसार ज्ञात कर लेनी चाहिये। संप्रदाय अच्छी तरह जानने वाले को गुरुमुख द्वारा यह सब ज्ञात कर लेना प्रशंसनीय है।

श्रीगुरु

श्री गुरु की महिमा, शक्ति जैसी कोई भी वस्तु नहीं है। श्री दक्षिणामूर्ति ने पृथक-पृथक युग में पृथक-पृथक नाम से अवतार धारण किये हैं। श्री विद्या मोक्ष के लिए ही है। अतः अद्वैत गुरु परम्परा के ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। नारायण, ब्रह्मा, वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक तक पुत्र परम्परा पश्चात् शुक से गौडपादाचार्य-गोविन्दभगवत् पादाचार्य–शंकर भगवत् पादाचार्य यह शिष्य परम्परा चली। अद्वैत परम्परा के गुरुओं ने इस विद्या के प्रचारार्थ परब्रम्ह ने कृतयुग में दक्षिणामूर्ति, त्रेता युग में श्री रामचन्द्र, द्वापर युग में कृष्णावतार, कलियुग में शंकरभगवत् पादाचार्य के रूप में अवतार लेकर, अद्वैतवाद एवं श्री विद्या में भेद नहीं है, दोनों एक ही विद्या है—ऐसा प्रचार किया है। परब्रम्ह शक्ति कामाक्षी के मन्दिर के ऊपर श्री शंकर भगवत्पाद ने नारायण से प्रारम्भ करके अद्वैत आचार्यों की परम्परा बताई है। श्रीशंकर भगवत्पाद द्वारा स्थापित, पंचायतन देवता स्वरूप, पंच आम्नाय स्वरूप, पंचमठ में प्रत्येक शिष्य को अद्वैत एवं श्रीविद्या का ज्ञान प्राप्त करवाने के लिये श्री मेरुयंत्र की प्रतिष्ठा की गई है। जिन्हें वर्तमान में भी देख सकते हैं। इससे अद्वैत विद्या ही श्रीविद्या है ऐसा ज्ञात होता है। अद्वैत परम्परा में निहित श्रीविद्या परम्परा में श्री गुरु मंडल है। कृतयुग में श्रीविद्यानन्दनाथ अथवा चर्यानन्द नाथ, त्रेतायुग में उड्डीशानन्द नाथ, द्वापर में षष्ठीशानन्द नाथ कलियुग में मित्रेशानन्द नाथ गुरु हुए हैं। इसके अतिरिक्त द्वितीय गुरुमंडल में

पर-प्रकाशानन्द से प्रारम्भ करके सात गुरु हुए हैं। सिद्धौघ गुरुमंडल में भोगानन्द नाथ से प्रारम्भ होकर चार गुरु हो गये हैं। मानवौघ मंडल में गगनानन्द नाथ से प्रारम्भ होकर आठ गुरु हुए हैं। अतः दिव्यौघ में परमेष्ठी गुरु, सिद्धौघ में परम गुरु, मानवौघ में गुरु की ऐक्यता की भावना करनी चाहिये। श्री विद्योपासक को स्वगुरु, परमगुरु, परमेष्ठी गुरु का नाम गुरुमंडल में मिलाकर जप करना चाहिये। इन तीनों गुरु एवं अम्बा में कोई भेद नहीं होने से श्रीचक्र में तीनों गुरुओं का स्थान बतलाया गया है। वहाँ उनकी पूजा भी होती है। इन तीनों गुरुओं की परम्परा का ज्ञान बहुत आवश्यक है। लग्न के समय जैसे नपता—पौत्र-पुत्र का ज्ञान होना जरूरी है। पितृकार्य के समय प्रपितामह, पितामह, पितृ-इन तीनों का ज्ञान होना अनिवार्य है। वैसे ही श्रीविद्या में श्री-गुरु की परम्परा का ज्ञान बहुत ही जरूरी है। इस गुरु परम्परा का ज्ञान जिसे न हो वह श्रीविद्योपासक काम का नहीं है।

श्रीगुरु लक्षण—अत्यन्त मनोहर, कोई का खराब न करने वाले, सुमुख सुलभ, सामर्थ्यवान्, अनेक तंत्रशास्त्र इत्यादि तत्व के ज्ञाता होने चाहिये। सुन्दर, सुमुख, दक्ष और सुलभ ये चार गुण शिष्य में भी होने चाहिये। यह न हो तो अनेक प्रकार के लक्षण तंत्रों में बताये गये हैं वह हों। गुरु-वाक्य में शिष्य को निःस्संदेह पूर्ण विश्वास होना चाहिये। आजकल "शिष्यों का द्रव्य कैसे प्राप्त कर लूं।" ऐसी आशा वाले गुरु बहुत अधिक हैं। शिष्य का चित्त (मन) हरण करने वाले गुरु अत्यन्त दुर्लभ हैं। तंत्रों में बताये गये लक्षणों वाले गुरु इस कलियुग में मिलना कठिन है। अतः दीक्षा बिना या मंत्रोपदेश बिना रह सकते हैं? नहीं रह सकते हैं। श्रीगुरु एवं पत्नी जन्म-जन्मान्तर में प्राप्त होते हैं। ऐसा कहा जाता है। इस वाक्य के अनुसार अपने पूर्वजन्म के पाप पुण्य के अनुसार अपने को गुरु प्राप्त होते हैं। इस प्रकार प्राप्त हुए गुरु के

वाक्य में परिपूर्ण श्रद्धा रखने से अपना कुछ भी नुकसान नहीं होता है।

महान गुरु का स्वरूप — अपने मस्तक में ब्रम्हरन्ध्र के बीच सहस्रदल कमल के बीच के बारह कमल पत्र के मध्य अ-क-थ बाहर त्रिकोण में ह-ज-क्ष अक्षरों वाला त्रिकोण है। उसमें मणिमय सिंहासन पर **सत्यमान** श्रीगुरु की पादुका है। इस पादुका का अपने को प्रत्येक जन्म में प्रतिदिन प्रातः काल उठते से ही बिस्तर में बैठकर ध्यान करना चाहिए। इस तरह ध्यान करने से अपनी उपासना अपने को निर्विघ्न आत्म ज्ञान प्राप्त करवाती है। पादुका पंचक से प्रारम्भ करके, श्रीगुरुस्तोत्र करके श्रीविद्या के अनुसंधान में रश्मिमाला के ३७ मंत्रों का मन में स्मरण करना चाहिए। इस तरह एक दिन भी नियम टूटे बिना करने से श्रीविद्योपासक को इच्छित वस्तुएं तथा इहलोक का सुख श्रीदेवी से मांगे बिना ही प्राप्त होता है। इसके पश्चात वेदतंत्र पद्धति से दंतधावन, स्नान, संध्या आदि अनुष्ठान करना चाहिए। यह विधि मेरे श्रीगुरुनाथ ने उनके "श्रीविद्या नित्याह्निक" में विस्तार पूर्वक बतलाई है। उसमें श्रीविद्योपासक के योग्य पारायण क्रम भी बतलाया गया है। श्रीगुरु एवं उपास्य देवता में कोई भेद नहीं है। उनमें भेद-भाव मानने वाले को पाप लगता है एवं उपासना भी सिद्ध नहीं होती है। श्रीगुरु एवं देवी में कोई भेद नहीं है। ऐसा मानने वाले उपासकों को उत्तम भक्ति करने वालों को श्रीगुरु के कहने से अथवा जो विषय नहीं बताये हों ऐसे विषयों का (शास्त्र के विरोध के बिना) आत्म प्रेरणा से स्वयं स्फुरणा से ज्ञान प्राप्त होता है। भक्ति का अर्थ है श्रीगुरु, मंत्र, देवता, यंत्र, प्रपंच, स्वयं इन छः का एक दूसरे के साथ ऐक्य अनुभव होना यही भक्ति है। इस प्रकार ६ रीति के अनुसंधान को (भक्तिरीति अभि-

धीयते) यह भावना मोक्ष का हेतु हैं। अन्तिम जन्म में मनुष्य श्रीविद्योपासक बनता है। "चरमे जन्मनि श्रीविद्योपासको भवेत्।" इस वाक्य की सत्यता ऊपर बताई गई है। करोडों पूजा के समान एक स्तोत्र. करोड़ों स्तोत्र के समान एक जप, करोड़ों जप के समान एक ध्यान, कोटि ध्यान के समान स्वयं देवता हैं- ऐसा समझना चाहिए। जप करके विश्रांति में ध्यान करना चाहिये। ध्यान की विश्रान्ति में जप करना चाहिये। इस तरह जप, ध्यान, पूजा, स्तोत्र करने वालों को मंत्रसिद्धि शीघ्र प्राप्त होती हैं। इसलिए सर्वोत्तम गुरु के पास से दीक्षा प्राप्त करके उसकी आज्ञा के अनुसार पूजा जप इत्यादि शुरु करने वाले को आत्मज्ञान प्राप्त होता है। आत्मज्ञान की प्राप्ति से ही मोक्ष प्राप्त होता है। दृढ़तापूर्वक अभ्यास करने से उपासक को गुरु स्वरूप एवं चित्त शक्ति स्वरूप अंबा का ज्ञान प्राप्त होता है। गुरु के लिए बहुत ही कहा जा सकता है। बुद्धिमान् के लिए इतना पर्याप्त है। विशेष जानने के लिए "गुरु गीता" मेरे गुरुनाथ द्वारा रचित "गुरुतत्व दर्शन" "अजपा विषय" इत्यादि ग्रन्थ देखें। गृहस्थ को सन्यासी के पास से दीक्षा नहीं लेनी चाहिये। गृहस्थ गुरु के पास से ही दीक्षा लेनी चाहिये।

श्री सूक्त

श्री सूक्त यह लक्ष्मी देवी की स्तुति है। श्रीसूक्त ऋग्वेद के परिशिष्ट में है। इस श्रीसूक्त में लक्ष्मी देवी अपना घर छोडकर न जावे एवं घर में स्थिर रहे ऐसी प्रार्थना है। लक्ष्मी देवी ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हैं। श्रीविद्योपासक को किसी के पास याचना नहीं करनी चाहिए। अंबा स्वयं ही कल्पवृक्ष है। अंबा कामधेनु चिन्तामणी है। कल्पवृक्ष की आशा रखनी चाहिये। कामधेनु का दूध दोहने के समान अंबा के अनुग्रह की प्रार्थना करनी चाहिए। चिन्तामणी मन में जिस वस्तु का स्मरण करते हैं वह प्रदान करती है। ये तीनों स्वर्ग में हैं। ऐसा पुराण में कहा गया है। अंबा की उपासना करने वाले को इष्ट वस्तु कल्पवृक्ष के समान, कामधेनु सदृश्य एवं चिन्तामणि समान भी प्राप्त होती है। अंबा चिन्तामणि गृह में रहती। श्रीविद्या अर्थात् श्री+विद्या—ऐसा अर्थ भी हो सकता है। श्रीविद्या के पद का लक्ष्य रखने वाली चितशक्ति–ज्ञानस्वरूपिणि, लक्ष्मी एवं सरस्वती अंबा के दोनों ओर चामर स्वरूप सहस्रनाम कहलाते हैं। कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि–ये तीनों अलग-अलग होने पर भी एक हैं। गुरु स्वरूप कल्पवृक्ष का आश्रय लेकर कामधेनु स्वरूप विद्या को दोहने से चिन्तामणी स्वरूप ज्ञान प्राप्त होता है। इस लोक में श्रीविद्योपासक की पूजा इत्यादि करने के लिए धन की आवश्यकता है। यह धन सदा अपने पास होना चाहिये। श्रीसूक्त द्वारा अविच्छिन्न रूप से लक्ष्मी की प्रार्थना करनी चाहिये। श्रीपुरं, श्रीचक्रं, श्रीविद्या, श्रीगुरुः,

श्रीसूक्त— इन पांचों में किसी प्रकार का भेद नही है। यदि भेद होता तो श्रीसूक्त की गणना इन पाँचों में नहीं की जाती। श्रीविद्या के १५ अक्षर हैं एवं श्रीसूक्त की १५ ऋचाएं हैं। इन १५ ऋचाओं ने श्री विद्या के १५ अक्षरों का उद्धार किया हो ऐसा लगता है। इस प्रकार मेरे गुरुनाथ का कथन है। अतः श्रीसूक्त श्रीपंचक में समाविष्ट है यह न्यायपूर्ण है। मैंने किसी स्थान पर ऐसा देखा नहीं है अपितु मेरे श्रीगुरु का वाक्य ही प्रमाण है।

श्री सूक्त में 'श्री' पद की लक्ष्मी देवी क्षीर समुद्र में मंथन के समय चन्द्र के साथ प्राप्त हुई। ऐसा पुराण में कहा गया है। इस लक्ष्मी का विष्णु के साथ लग्न किया गया। एक समय लक्ष्मी देवी ने विष्णु पर क्रोधित होकर, श्री शैल में आकर बिल्ववृक्ष के रूप में तप करके, भ्रमरांविका को प्रसन्न करके मल्लिकार्जुनं का अनुग्रह प्राप्त किया। फिर विष्णु एवं लक्ष्मी देवी का समाधान हुआ. ऐसा पुराणों कहा गया है। इसलिये श्री चक्र पूजन में बिल्व पत्र से विशेष पूजन करने को कहा गया है। सप्तऋषि में से कश्यप नामक ऋषि ने तिरुपति वेंकटेश का स्तोत्र करते समय कहा है—

॥ कादि ह्लीमन्तविद्यां या समप्राप्य परदेवतां ॥
॥ कलौ श्री वेंकटेशाख्या भाति तां हृदये भजे ॥

"कादि से ह्लीं पर्यन्त पंचदशी विद्या स्वरूपिणी जो परदेवता है वही कलियुग में तिरुपति में वेंकटेश स्वरूप में स्थित हैं। उनका मैं हृदय में भजन करता हूँ।" अतः धनुर्मास में वेंकटेश बिल्वार्चन होता है। इन पन्द्रह ऋचाओं का दस दिन में ऋषि, छन्द, देवता, न्यास ध्यान के साथ जप करने से सर्वमंगल होता है। इन लक्ष्मी देवी के १८० नाम विशेषतः तंत्र में कहे गये हैं। इन १८० नामों में से एक-

एक आवरण के साथ २० नाम जोड़कर पूजा करनी चाहिये। इस ढंग से श्री विद्या की नवावरण पूजा करने वाले सब मंगल को प्राप्त करते हैं। श्री सूक्त की विधानपूर्वक पूजा करने से वह महापूजा कहलाती है। ऐसा 'त्रिपुरा रहस्य' में कहा गया है।

श्री सूक्त का तत्व श्रीतत्व में अर्तर्निहित है। अपने शरीर में आनन्द स्वरूप विष्णु के गुण रूपी चित्‌रूपिणी लक्ष्मी देवी रहती हैं। इन लक्ष्मी देवी के दोनों ओर ममत्व एवं मद ये दो हाथी हैं। इन हाथियों की सूँड़ में आशा एवं प्रीति स्वरूप दो स्वर्ण कलश हैं। ये कलश तृप्ति रूपी जल से पूर्ण भरे हुए हैं। इस जल से हृदपद्म चितिरूपिणी लक्ष्मीदेवी का अभिषेक करते हैं। इससे आनन्दमय विष्णु ही कामेश्वर कहलाते हैं। चितिरूपी लक्ष्मी देवी ही ललिता देवी हैं। इससे श्री सूक्त एवं ललिता देवी का सम्बन्ध है।

श्री सूक्त की पन्द्रह ऋचाओं में केवल अर्थ संक्षेप में नीचे बताये गये हैं। इस श्रीसूक्त पर श्री विद्यारण्य एवं पृथ्वीधर नामक महापुरुषों ने भाष्य लिखे हैं। इन दोनों भाष्यों को लक्ष्य में रखकर नीचे अर्थ बताये गये हैं।

प्रथम ऋचा—"वेदों में अन्तर्निहित अर्थों से मेरे हृदय में से अज्ञान का नाश करने वाले, विद्या प्रदान करने वाले गुरु मुझे पुरुषार्थ प्रदान करें।" ऐसी गुरु प्रार्थना से प्रथम ऋचा प्रारम्भ होती है 'हे अग्नि ! सुवर्णमय शरीर वाली, हरिणी स्वरूपा, सुवर्ण स्वरूपा एवं रौप्य स्वरूपा होकर पुष्पमाला धारण करने वाली अथवा सुवर्णमय रौप्य मय हार धारण की हुई चन्द स्वरूप प्रकाशित होने वाली सुवर्णमय शरीर वाली, शुभ लक्षण वाली लक्ष्मी देवी मेरे हृदय को आकर्षित करें।"

द्वितीय ऋचा—हे अग्नि! नाश करने वाली, भय का नाश करने वाली लक्ष्मी देवी को मेरे लिये बुलाकर ले आओ। ऐसी लक्ष्मी आकर सुवर्ण, पशु, अश्व, मित्र, पुत्र, सेवक इत्यादि मुझे प्रदान करें।

तृतीय ऋचा—आगे घोड़ें बंधे हुए रथों के पीछे हाथी के शब्दों से अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाली लक्ष्मी देवी को मेरे समीप बुलाओ। ये मेरे समीप रहें।

चतुर्थ ऋचा—वायु एवं मन जहाँ नहीं पहुंच पाते हैं, वहाँ रहने वाली, (ब्रम्हस्वरूपिणी) मन्दहास्यवाली, सुवर्णमय देहवाली, शीत-ज्योति स्वरूपा देवी (नक्षत्र में रहने वाली) (अथवा) रुद्र स्वरूपिणी, तृप्तिवाली, भक्त को इच्छित प्रदान करने वाली, पद्म में स्थिर बैठी हुई, कमलकान्ति देहवाली, ऐसी लक्ष्मीदेवी को बुलाकर लाओ।

पंचम ऋचा—चन्द्र के समान प्रकाशमान्, अतिकांतिमान्, कीर्तिवाली, देवताओं द्वारा पूजिता, सर्वव्यापिनी, हाथ में पद्म धारण करने वाली, काम-कलास्वरूप वाली लक्ष्मी देवी की शरण में मैं हूं। मेरी अलक्ष्मी का नाश करो, ऐसी प्रार्थना करता हूं।

षष्ठो ऋचा—सूर्य के समान देहकीर्ति वाली, है लक्ष्मी देवी! आपके तप के प्रभाव से हाथ में उगे हुए बिल्व वृक्ष के फल में खूब शक्ति उत्पन्न हुई है। ऐसा फल मेरे पास से वाह्य आनन्दस्वरूप दुर्गति रूपी अलक्ष्मी का नाश करे।

सप्तम ऋचा—कुबेर, कीर्ति इत्यादि चिन्तामणि के साथ मुझे रखो, मैं मनुष्य-स्वरूप में जन्मा हूं। यह कुबेर मुझे पहिले से कीर्ति, सर्व सौभाग्य, समृद्धि प्रदान करे।

अष्टम ऋचा—भूख से प्यास से बहुत दु:खी हुआ मैं आपकी जेष्ठा अलक्ष्मी देवी से दु:खी हुंआ हूं। (उसको आशा नहीं रखी है।) अत: हे माता ! द्रव्य बिना, अभिवृद्धि के अभाव रूपी सब दुर्गति मेरे घर में से दूर हो।

नवम् ऋचा—भूमि स्वरूपिणी, चल नहीं सके ऐसी, सदैव अनाज इत्यादि से परिपूर्ण, गोमय से रंगी हुई, सर्व प्राणियों में व्याप्त रही हुई, भूमि देवी स्वरूप लक्ष्मी देवी मेरे पास रहो।

दशम ऋचा—पूर्णमान मन की इच्छा वाला, सन्तोष वाला, सत्यवादी, पशु, भैंस आदि से पूर्ण बहुत दूध दही वाला, भोजन के हर प्रकार के पदार्थ वाला मैं बनूं। ऊपर कहे गये अभीष्ट पदार्थ मेरे पास नित्य रहें।

एकादश ऋचा—हे कर्दम ऋषि ! हे लक्ष्मी पुत्र ! मुझे सहायता करने वाले आप लक्ष्मी देवी के पुत्र हैं, अत: आपकी माता, कमल-पत्र में रहने वाली लक्ष्मी देवी मेरे वंश की रक्षा करें।

द्वादश ऋचा– हे जलाभिमानी देवताओं ! प्रिय कार्य करने दो। लक्ष्मी के पुत्र चिक्लित को मेरे घर में रहने दो। उनकी माता लक्ष्मी देवी मेरे घर में रहें। ऐसा करो। (चिक्लित का अर्थ मन्मथन ऐसा "सूक्तार्थ संग्रह" में कहा गया है।)

त्रयोदश ऋचा—हे अग्नि ! शीतल गुण वाली, कमल फूल वाली, पुष्टि स्वरूप वाली, पीतवर्ण वाली, कमल माला धारण करने वाली, चन्द्र स्वरूप मन वाली, सुवर्णमयी श्री लक्ष्मी देवी को मेरे घर बुलाकर ले आओ।

चतुर्दश ऋचा—हे अग्नि ! भक्त के ऊपर बहुत करुणा करने वाली, हाथ में दण्ड धारण करने वाली, धर्म दण्डस्वरूप वाली, शोभायमान देह की कांति वाली, सुवर्णमय कमल पुष्प की माला पहनने वाली, सूर्य स्वरूपिणी (ऐश्वर्य रूपिणी) स्वर्णवर्ण वाली, श्री लक्ष्मी देवी को मेरे घर बुलाकर ले आओ।

पंचदश ऋचा— हे अग्नि ! मेरे पास समृद्धि, धन पशुओं भैंसों वगैरह, सेवकजन पुत्रों, मित्रों, पत्नियों वगैरह को स्थित रखने वाली लक्ष्मी देवी को बुलाकर मेरे घर ले आओ। (इस सूक्त के अनेक विद्वानों ने भाष्य लिखे हैं।)

फल श्रुति— सूर्य के समान ब्रह्म दिखने वाले, नित्य इन पन्द्रह ऋचाओं को करने वाले, घी में होम करने वाले को ऐश्वर्य प्राप्त होता है। इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा वालों को यह लक्ष्मी देवी की पन्द्रह ऋचाओं का जप करना चाहिये। इस श्री सूक्त द्वारा बुद्धिमान जमीनवाला बनता है। इसके अतिरिक्त श्रीकंठ भाष्य का ज्ञान होता है। श्री रत्नकोश, मंत्रकल्यार्णव इत्यादि ग्रन्थों में श्री सूक्त की भिन्न-भिन्न ऋचाओं के जप, होम, ऋषि, छंद देवता, ध्यान-श्लोक इत्यादि विस्तार से कहे गये हैं। विस्तारभय के कारण यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है। इस प्रकार श्री पंचक में वर्णित है।

श्रीपुरं की अच्छी तरह मन में भावना करके, श्रीचक्र की भावना करके, श्रीभास्करराय विरचित भावनोपनिषद् का भाष्य तथा तत्व इत्यादि ज्ञात करके, ऊपर कहे अनुसार अच्छी तरह ज्ञान करके श्री गुरु के उपदेश द्वारा श्रीविद्या के जप के द्वारा श्रीचक्र के मध्य बिन्दु में स्थित श्री ललिताम्बिका चित्शक्ति की आवरण पूजा, पंच पंचिका पूजा, षड्दर्शन पूजा, षडाधार पूजा, षड़ाम्नाय पूजा,

षडन्वीयी शांभवी पूजा, सप्तविंशति रहस्य क्रम पूजा लक्ष्मी के १८० नाम, चण्डी देवी के ३६० नाम की पूजा करके नाम परायण इत्यादि, कवच इत्यादि पाँच अंगों का गुरु-उपदेश के अनुसार करने वाला इस इस जन्म में मोक्ष प्राप्त कर सकता है। अतएव श्री पंचक का ज्ञान सबको, विशेषतः, श्रीविद्योपासकों को अवश्य प्राप्त करना चाहिये। श्री पंचक यहाँ पूर्ण होता है –ऐसा नहीं ससझना चाहिये। समुद्र जल में से बिन्दु के समान यह ज्ञान लिया गया है अतः संक्षेप में लिखा गया है। अतः मुझे ज्ञात न हो ऐसी त्रुटि रही हो तो ज्ञानी, अनुभवी, तंत्रक एवं श्रेष्ठ उपासक उन दोषों के लिए मुझे क्षमा करके जल में दूध भरा है, उसमें से दूध ग्रहण करें – वैसे ही सारान्वेषण करके मेरे ऊपर अनुग्रह करें ऐसी विनम्र प्रार्थना करता हूँ। यह कार्य श्री गुरु स्वरूपिणी कामाक्षी के लिए सन्तोषकारी बने।

॥ श्री गुरुर्जयति ॥

संख्या शास्त्र

संख्याशास्त्र वररुचि द्वारा बनाया गया है। वररूचि चार हो गये हैं उनमें कौनसे वररूचि ने संख्याशास्त्र बनाया है, यह निश्चित नहीं कहा जा सकता है।

एक वाक्यकार वररूचि हो गये हैं ऐसा ज्ञात होता है। इन्होंने पंचांग गिनती में २५६ वाक्य लिखे हैं ये वाक्य संख्याशास्त्र को ध्यान में रखकर रचे गये हैं। वाक्यकार वररूचि ही संख्याशास्त्री वररूचि हो ऐसा लगता है।

संख्याशास्त्र का उपयोग महापुरुषों ने किया है। देवी स्वरूप भास्करराय ने भी अक्षर संख्या में गिनती के समय ५७६ यह "तीर्थात्मा' शब्द बताया है। ती=६, र्थ=७, त्मा=५ बांयी तरफ से गिनने से ५७६ होता है। अतः संख्याशास्त्र प्रमाणभूत है।

संख्याशास्त्रानुसार मैंने कई विषयों पर लिखा है। अभी-अभी श्रीविद्या– इन तीन अक्षरों से— योग करके, गुणाकार करके, भागाकार करके १४२ की संख्या श्रीविद्या के सम्बन्ध में अनेक विषयों में ज्ञात होती है। श्रीविद्या अर्थात् १४२। इसे बदलने से २४१ होता है। इसमें २४+१= २५, अर्थात् मेरु का नाम होता है।

१+४२= ये ४३ त्रिकोण श्रीचक्र के होते है । ४×२=८+१=९ नवावरण, मेरु मंत्र के नवाक्षर होते हैं ।

श्रीचक्र के नवकोण होते हैं । ४+१=५ ये शक्ति चक्र तथा चार शिवचक्र वताते हैं । १=विन्दु, २+१=३ त्रिकोण, ४×२=८ अष्टकोण (अष्टार) १४−४=१० दशकोण, ये अन्तर्दशार बताते हैं । ४×२=८ अष्टदल वताते हैं । १४+२=१६ अर्थात् षोडशदल बताते हैं । २+१=३ त्रिवलय एवं भूपुरत्रय बताते हैं । २४+१=२५ पंच पंचिका वताते हैं । ४+२=६ षड्दर्शन, षडाधार षडाम्नाय, षडन्वयी, शांभवी इत्यादि वताते हैं । ४२+२=४४ चतुश्चत्वारिंशत् मंदिर की पूजा बताते हैं । १४+२=१६ ये नित्याषोडशिकाएँ बताते हैं । ४+२=६+१=७ दिव्यौघ वताते हैं । ४+सिद्धौघ बताते हैं । ४×२=८ मानवोध बताते हैं । ४×२=८×८=६४ चौंसठ उपचार पूजा वताते हैं । २४+१=२५+२=२७ सप्तविंशति रहस्य क्रम पूजा वताते हैं । १=मूलमंत्र, ४+२=षडङ्गशक्ति देवता, १२=परौघ १४२+४×२=१५०+१+२=१५३ पूरे आवरण देवता वताते हैं ।

श्री भास्करराय ने इस शंकराद्वैत मतको, अभेद को, श्रीविद्या को, रज्जु सर्प न्याय से; विवर्तवाद द्वारा प्रतिपादित किया है । वे शास्त्र संबंध, तंत्र सम्बन्ध, वेद सम्बन्ध में अतीव प्रवीण थे । "वरिवस्या रहस्य" में पंचदशी मत्र का हिसाब, मात्रा इत्यादि विशेष बतलाया गया है । सूर्य की तपस्या करके पुत्री को पुत्र के स्वरूप में बदला है । उन्होने कृष्णा नदी पर तप किया था । भगवती के अनुग्रह द्वारा ऐसे बहुत से अलौकिक कार्य किये हैं । बहुत से स्थानों पर श्रीचक्र की प्रतिष्ठा की है । उनके अन्त समय में वे कावेरी नदी के किनारे मध्यार्जुन में रहते थे । तब एक सन्यासी उसी मार्ग पर से

मध्यार्जुन के दर्शनार्थ आते थे। जब सन्यासी उनके घर के समीप आते तब श्री भास्करराय ओटले से उठकर घर में चले जाते थे। सन्यासी को बहुत दुःख होता था कि श्री भास्करराय सन्यासी का सम्मान नहीं करते है। अतः सन्यासी कहते थे कि श्री भास्करराय गर्वी हैं। श्री भास्करराय हमेशा महापुरुषों के साथ बहुत मर्यादा से रहते थे। एक बार प्रदोषकाल में मध्यार्जुन क्षेत्र में बहुत से मनुष्य दर्शनार्थ उपस्थित हुए थे। तब देवी स्वरूप भास्करराय को सन्यासी ने प्रत्यक्ष बहुत अपशब्द कहे। तब श्री भास्करराय ने सन्यासी से कहा कि "आप दण्ड एवं कमण्डलु एक स्थान पर रखियेगा ताकि मैं उन्हें वदन कर सकूं।" इस प्रकार सन्यासी ने दण्ड एवं कमंडलु एक स्थान पर रख दिये। उनको श्री भास्करराय ने प्रणाम किया। तब दंड एवं कमंडलु के टुकड़े-टुकड़े हो गये और हवा में उड़ गये। यह दृश्य देखकर सन्यासी वहाँ खड़े ही नहीं रहे और वहाँ से चले गये।

ऐसा होने का कारण यह था कि श्री भास्करराय (गुरु के अनुग्रह से) महाषोढ़ा न्याय नियमित करते थे। इस तरह श्री भास्कर-राय के समान श्रीविद्योपासक किसी को वंदन नहीं करते हैं। किन्तु वर्तमान में जो उपासक प्रातः काल में बाला, मध्याह्न में पंचदशी एवं सायंकाल में षोडशी का उपदेश लेते हैं एवं "मैं श्री विद्योपासकी हूं" ऐसा कहते-फिरने वाले इस तरह छाती ठोककर कहते हैं कि हम किसी को वंदन नहीं करते हैं। ऐसे मनुष्यों को भगवती ने ही बचाना चाहिये।

"परशुराम कल्पसूत्र" में कहा गया है कि गुरु-पुत्र, गुरु-पत्नी, ज्येष्ठ दीक्षा भ्राता, तथा स्वयं में वय में बड़े हो उन्हें प्रणाम करना चाहिये

एक समय मेरे गुरुनाथ के साथ एक श्रीविद्योपासक आये (जो कि उम्र एवं दीक्षा में वड़े थे), उस समय मैंने मेरे गुरुनाथ को प्रणाम किया। उन महापुरुष को प्रणाम नहीं किया। क्योंकि गुरु पास हैं तब अन्य किसी को वन्दन नहीं करना चाहिये। इस प्रकार समझकर उन महापुरुष को मैंने प्रणाम नहीं किया। उन महापुरुष को मन में थोड़ा दुःख हुआ। मुझे देखकर उन्होंने कहा कि "तुम उपासना का विषय जानते हो। तुम्हारी योग्यता मुझे अच्छी और उचित लगी। तुम अच्छे उपासक हो। फिर भी श्रीगुरु के सान्निध्य में कोई महान पुरुष हो, तब श्रीगुरु को वन्दन करके उस महान् पुरुष को वन्दन करना चाहिये, ऐसा तुमने नहीं किया। अतः मेरे मन में थोड़ा दुःख होता है।" मैंने तुरन्त उन महाशय को देखकर कहा— "श्रीविद्योपासक का धर्म तो आप अच्छी तरह से जानते ही हैं। आप पचास-साठ वर्षों से उपासना करते हैं। आप अनुभवी है। अतः उपासक आचरण मैं आप को बताने में असमर्थ हूं। आपको मालूम ही है। अतः मैंने नमस्कार नहीं किया"। मेरे इस प्रकार कहने पर उन्होंने कहा कि— "आप कहते हो वह, बराबर है। फिर भी विषय जानकर मुझे प्रणाम नहीं किया, अतः मुझे थोड़ा दुःख हुआ।" मैंने गुरुनाथ की ओर देखा। उन्होंने संकेत द्वारा मुझे उन महापुरुष को प्रणाम करने कहा। अतः मैंने तुरन्त उन्हें नमस्कार किया। इसमें उन्होंने परम प्रसन्नता से मुझमें कहा कि— तुम अच्छे रहोगे। भगवती तुम पर अत्यधिक अनुग्रह करेगी। तुम्हारी परीक्षा लेने को मैंने इस तरह कहा था।" ऐसा कहकर उन्होंने मुझपर पूर्ण अनुग्रह किया। तब मेरे गुरुनाथ ने कहा कि—

यत्रैव यत्रैव शिरो मदीयं, तत्रैव तत्रैव पदाम्बुजं ते।
यत्रैव यत्रैव मनो मदीयं, तत्रैव तत्रैव तव स्वरूपम्॥

अर्थात् जहां-जहां मेरा मस्तक झुकता है, वहां-वहां भगवती के पादाँबुज हैं। जहां-जहां मेरा मन जाता है, वहां-वहां गुरु एवं देवो का स्वरूप है।

भास्करराय ने दो विवाह (लग्न) किये थे। पहली पत्नी आनन्दवल्ली जिनका दीक्षा-नाम पद्मावती था। मध्वसन्यासिनी के साथ विवाह करके उसको हराकर उसके भाई की पुत्री के साथ दूसरी शादी की, वह पत्नी पार्वती थी। तंजावर के महाराजा ने भास्करराय को एक गाँव सर्वमान्य में दिया था। मध्यार्जुन के महादान मुहल्ले में रहते थे। वह घर "भास्कर घर" के नाम से आज भी प्रसिद्ध है। मध्यार्जुन में वे रहते थे, इस कारण मेरे मत से मध्यार्जुन यह दर्शाता है कि श्रीविद्या ब्रह्मविद्या एक ही हैं। मध्यार्जुन कावेरी के किनारे तंजावर के समीप हैं। कावेरी एवं श्रीविद्या दोनों सम्बन्धित है ऐसा संख्याशास्त्र की दृष्टि से मुझे लगता है।

एक समय भगवत् पाद मध्यार्जुन क्षेत्र में प्रचार कर रहे थे। तब मध्यार्जुन के समीप तीर विषयी निर्लूर (गाँव का नाम अथवा व्यास काशी—जहाँ रहने वाले, गतवर्ष निर्वाण प्राप्त करने वाले, महा-पंडित काशीराज के श्रीगुरु ब्रह्मर्षि राजशास्त्री का जन्मदेश—तीरविषयीनिर्लूर) ग्राम में महान् पंडित एवं शास्त्रज्ञ रहते थे। वे अद्वैत मत को नहीं मानते थे। उस समय मध्यार्जुन क्षेत्र में ज्योर्तिमय महालिंग ने स्वयं का दाहिना हाथ ऊंचा करके बताया और तीन बार कहा कि "सत्यं अद्वैतम्, सत्यं अद्वैतम् सत्यं अद्वैतम्।" ऐसा कहने से वहाँ मूकाम्बा भगवती के सम्मुख, अत्यन्त प्रभाव से श्रीविद्या महत्ता प्रतिपादित करने के लिए एक मेरु है। ब्रम्हविद्या ही श्रीविद्या, श्रीविद्या ही अद्वैत विद्या— इस दृढ़ निश्चय से कावेरी के तीर मध्यार्जुन में भास्करराय रहते थे।

कावेरी की विशेषता— अगस्त्य ऋषि ने लोपामुद्रा के साथ लग्न किया था। लोपामुद्रा जन्म से पुरुष रूप थी किन्तु श्रीविद्या की उपासना करने से वह भगवती स्वरूप हुई। उनकी पुरुषत्व की मुद्रा मिट गई। वे स्त्री रूप हो गई। अत: उनका नाम लोपामुद्रा हो गया— ऐसा मेरे गुरुनाथ बतलाते थे। ये लोपामुद्रा हादिमत की अधिष्ठात्री हैं। कावेरी के साथ अगस्त्य मुनि का लग्न हुआ था। श्रीविद्योपासक की पत्नी श्रीविद्योपासक होनी चाहिए। भास्कर= २१४, कावेरी= २४१, श्रीविद्या= १४२, । श्रीविद्या की संख्या बदलने से कावेरी की संख्या होती है। अत: अगस्त्य ऋषि ने कावेरी के श्रीविद्या स्वरूप होने से उसके साथ लग्न किया। यह कावेरी मध्यार्जुन क्षेत्र में प्रवाह स्वरूप बहने से कावेरी के तीर पर भास्कर राजपुरं स्थित है।

श्रीविद्या में, मेरुमंत्र में न हो, ऐसी कोई विद्या नहीं है। जिस तरह हस्तिपाद से बढ़कर कोई पैर नहीं है, उसी तरह कावेरी किनारे स्थित मंदिरों का हिसाब नहीं है। कावेरीतट पर स्थित मंदिर अतुलनीय हैं। अत: भास्कररराय मध्यार्जुन क्षेत्र में कावेरी प्रवाह के के समीप ९६ वर्ष की आयु में पुनर्जन्म के बिना सच्चिदानन्द ब्रम्ह-शक्ति स्वरूप श्रीराजराजेश्वरी देवी के चरणों में लीन हुए। भास्कर राजपुरं में उनकी दूसरी पत्नी पार्वती देवी ने इनका तथा आनन्द-वल्ली का एक मंदिर बनाया है। (लगभग ३०० वर्ष पहिले) अभी-अभी भास्कर राजपुरं में नारायण स्वासी अय्यर एवं रामचन्द्र अय्यर ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार किया है। ऐसा कहते है कि वहाँ एक घर में वे पूजा करते थे उसमें स्फटिक मेरु एवं भगवती की मूर्ति है। राजाओं ने भास्कररराय को धनधान्य जमीन दी थीं। वह अब कहाँ है? किसके पास है? इसकी जानकारी नहीं है। वे जिस घर में रहते थे वह घर अब धराशायी हो गया है।

।। सर्व शिव शक्तिमयं जगत् ।।

"नमो भगवत्यै श्रीचन्द्रशेखर मूर्तये।
सच्चिदानन्द रूपिण्यै स्वात्मबोध प्रपूर्तये।"

चराचर आत्मावान् प्रपंच शिव शक्तिमय है। शिव के बिना शक्ति नहीं है। शक्ति के विना शिव नहीं हैं। शिव-शक्ति का भेद नहीं बताया जा सकता है सूर्य एवं उसकी किरणें [प्रकाश], चन्द्र एवं चांदनी साथ-साथ होते हैं। उसी तरह शिव-शक्ति भेद रहित साथ-साथ हैं।

चराचर आत्मज्ञान प्रपंचपूर्णतया शिव शक्ति में निहित है। ऐसा ज्ञान हमको होना चाहिए। सब देखते हुए शिव-शक्तिमय है, ऐसा प्रतीत होता है। यह भी वास्तविक ब्रह्म ज्ञान है। यह अनुभव की वस्तु है, ऐसा महापुरुषों का कथन है यह भी मुक्ति का कारण है— यह ज्ञान दृढ़ हो, तब जन्म मृत्यु नहीं होते। यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनुभवी महान् पुरुषों ने हमें अत्यन्त सुलभ मार्ग बताये हैं। हम प्रति दिन जो शुभ काम करते हैं, वह शिव-शक्तिमय है। ऐसा ज्ञान होने के लिए अनेक मार्ग हैं। इस प्रकार अनेको अनुभवी ज्ञानी पुरुषों ने बताया हैं।

सर्व प्रथम हम पूजा करते हैं, उस विषय में विचार करें। पूजा में घी एवं तेल का दो दीप होते हैं। ये दो दीप शिव-शक्ति

स्वरूप हैं।तेल-दीप शक्ति का स्वरूप है। अतः तेल-दीप में लाल रंग की वर्ती रखनी चाहिये। घी का दीप शिव स्वरूप होता है, उसमें सफेद वर्ती रखना चाहिए।शिव का अर्थ है सफेद, शक्ति का अर्थ लाल– ऐसा शास्त्र में कहा गया है। तेल-दीप में तिल का तेल प्रयुक्त करना चाहिये। [तिल का अर्थ तिल्ली होता है।] संख्या शास्त्रानुसार ति=६ ल=३ अर्थात् ३६ होता है। सख्या शास्त्र में अक्षरों का हिसाब वाम भाग से करना चाहिये। इस ३६ का अर्थ ३६ तत्व होता है। तत्व भूमि से प्रारम्भ होकर शिवपर्यंत ३६ हैं। इस तरह शिव-शक्ति इन ३६ तत्वों पर आधारित हैं। तत्वों में शिव-शक्ति निहित हैं। कभी शिव का प्राधान्य होता है, तो कभी शक्ति का प्राधान्य होता। ऐसा प्रतीत होने पर भी यह शिव-शक्ति दोनों समप्रधान, समसत्व स्थित है। इस तरह होने पर भी शक्ति ही प्रपंच का कारण दिखाई देती है। ऐसा उपनिषदों ने कहा है। इस शक्ति का ज्ञान सरलता से प्राप्त नहीं होता है। तिल को पीलने पर तेल निकलता है। उसी तरह तत्वात्मक प्रपंच का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु द्वारा अच्छी तरह उपदेश लेने एवं तत्व में जीवन देखने से शक्ति-ज्ञान प्राप्त होता है। यह शक्ति गति स्वभाव वाली होने से लाल वर्ण की होने से इसका प्रतीक तिल का तेल भी लाल वर्ण का है अन्य दूसरे तेल भी होते हैं। परन्तु दीप में तिल का तेल ही होना चाहिये। अपनी बांयी तरफ घी का दीप शिव का प्रतीक है। दाहिनी तरफ तेल का दीप शक्ति का प्रतीक है। शिव-शक्ति अर्धनारीश्वर स्वरूप होने से उन्हें जुदा नहीं किया जा सकता है। ऐसा शास्त्र का कथन है। अर्धनारीश्वर स्वरूप अपनी बाये ओर शक्ति एवं दाहिनी ओर शिव हैं। इस घी को संस्कृत में आज्यं (आयुः) कहते हैं, घृत कहते हैं। आयु अर्थात् आयुः। संख्याशास्त्रानुसार= १०/१० का अग्निकला से है। अग्नि जिस प्रकार सब को जलाकर भस्म बना

देती है उसी तरह आज्य में शिव स्वरूप में निहित अग्नि जलाकर भस्म कर देती है। इस शिव का नाम ज्ञान बताता है, अतः शिव ज्ञान कहलाता है। इससे अम्बा को सहस्रनाम में "शिवज्ञान प्रदायिनी कहा गया है। इसे मन में रखकर गीता के आचार्य श्री कृष्णार्जुन ने– 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते अर्जुन।" कहा है।

ज्ञान यह संख्या शास्त्रानुसार ०० (दो शून्य)। व्यवहार में जिस तरह दूध में से घी निकाला जाता है उसी तरह शिव ज्ञान जानने के लिए मन सत्व गुण से परिपूर्ण होना चाहिए। सत्व का वर्ण सफ़ेद है। गाय का दूध दुहा जाता है उसी तरह प्रपंच में सत्वगुण भी धवल है। फिर जैसे दूध बराबर गर्म किया जाता है, वैसे ही सत्वगुण को तप द्वारा गर्म किया जाता है। गरम दूध ठंडा करके उसमें थोड़ा दही मिलाकर जमाया जाता है। जमा हुआ दही मथकर मक्खन निकलता है उस मक्खन का वर्ण श्वेत है, (मक्खन का अर्थ सफेद वर्ण का घी) उसे 'नवनीत' कहते हैं। नवनीत अर्थात् नया लाया हुआ। रूप बिना के शिव को नया रूप दिया गया है, वह नवनीत कहलाता है। मक्खन अच्छी तरह से गर्म करने से घी होता है। वैसे उपासक भी तप करके दृढ़ वैराग्य द्वारा, अभ्यास द्वारा, साधना में शरीर तापकर, तप द्वारा शिव स्वरूप होता है। इस तरह सत्वगुण तप द्वारा उपासक के शरीर को शिव स्वरूप बनाता है। शिव ही अंतिम स्वरूप है। उसका अन्य रूप नहीं। दूध का दही बनाकर, मक्खन बनाकर, गरम करके घी बनाने के बाद अन्य कोई परिणाम नहीं होता हैं। यह घी कभी घन या प्रवाही दीखता है। परन्तु अन्य कोई परिणाम नहीं होता है। अतः महान पुरुष घी को शिव कहते हैं। ये दोनों दीपक शिव-शक्ति का ज्ञान प्रदान करते हैं। केरल में तिरूचुर के मंदिर में शिव का घी द्वारा अभिषेक किया जाता है।

शिवलिंग के दर्शन नहीं होते हैं। परन्तु अभिषेक किया हुआ घी ही दिखाई देता है। यह घी ही शिव समान दिखता है।

पूजन में रक्त चंदन एवं श्वेत चन्दन लिया जाता है। रक्त चंदन शक्ति के लिए एवं श्वेत चंदन शिव के लिए प्रयुक्त होता है। सफेद में भीमसेनी कपूर-केशर मिलाने से (भीमसेनी कपूर अर्थात् शिव एवं केशर अर्थात् शक्ति) शिव-शक्ति कहलाता है। शिव असीम समुद्र के समान है। इस शिव को शक्ति द्वारा बांधा जा सकता है। समुद्र में जहाज नहीं रोका जा सकता है। जहाज को रोकने के लिए समुद्र में एक स्थान पर लंगर डालना पड़ता है। उसे बन्दरगाह कहते हैं। इस समुद्र में बने बन्दरगाह पर ही जहाज बांध सकते हैं। अन्य स्थान पर जहाज नहीं बांध सकते हैं। उसी तरह शक्ति में जो बंधा हुआ है, उसे ही शिव कहते हैं। (व्यवहार में) सरकार द्वारा निर्मित मकान लाल रंग से बने हुए होते हैं। वे शक्ति स्वरूप होते हैं। बिना किनारी की धोती नहीं पहिनना चाहिए, ऐसा धर्मशास्त्र कहते हैं। सफेद धोती की कोई भी रंग की किनारी होनी चाहिये। अपने घरों पर विशेष पर्व पर रांगोली बनाते हैं। वैसे ही शिव-शक्ति के ज्ञान के लिए शिवत्व को शक्ति द्वारा बांधा गया है, ऐसा ज्ञात होता है। संक्रांति (मकर) के समय घरों में लाल-सफेद रंग की राँगोली बनाते हैं। मंदिरों में जलाशयों लाल-सफेद रंग से अलंकृत किया जाता है। इस सब प्रपंच में शिव शक्ति का स्वरूप है ऐसा ज्ञान अपने को होना चाहिये। ऐसा महापुरुषों द्वारा पूर्व कथित है।

यह सब दिखाई देता है, वह उमा रूप है, "अव्यक्तं तु महेश्वरः" ऐसा 'सूर्य संहिता' में कहा गया है। 'जो स्पष्ट दिखता है,

वह सर्व शक्ति है। जो अव्यक्त अथवा छुपा हुआ है, वह शिव है।' ऐसा अर्थ होता है। उमा के संवन्ध में विचार करें। अंबा शिव की प्राप्ति के लिए तप करती थी। तब उसकी माता मेना द्वारा "उ= रोना मा= नहीं रुदन छोड़ दो, तप द्वारा शरीर मत बिगाडो' इस प्रकार कहे जाने से 'उमा' नाम कहलाया। कवि कालिदास ने कहा है कि यह अर्थ वहुत ही सामान्य है। महान् नीलकंठ दीक्षित के अनुसार— "ओमित्युमेतियुवयोः अभिधानं एकम्" इस प्रकार कहा है। जो भिन्न नहीं हो सकें, ऐसे अभिन्न शिव-शक्ति को देखकर ऐसा कहा गया है।

शिव कहने से ब्रह्म को "तस्य वाचकः प्रणवः" ऐसा शास्त्रीय ढ़ंग से प्रणवः अर्थात् अलग-अलग प्रकार से शक्ति को 'ब्रम्हशक्ति' कहते हैं। 'उमा' कहते हैं। अर्थात् 'प्रणव' एवं 'उमा' एक ही हैं। 'ओम् अर्थात् उमा-- दोनों एक ही हैं। अकार+उकार+मकार= प्रणव को पृथक करना होता है। प्रथम अकार को अन्त में मिलाने से उकार+मकार+अकार =उमा होता है। यह ब्रह्म शक्ति है। यह ब्रम्ह शक्ति ही जड़ मेना का संसार है। ऐसा कहना योग्य होगा। मेना का संसार किस तरह भिन्न किया जा सकता है, यह देखें"- हि निश्चयेन मायालयं प्राप्नोति यत्र सः हिमालयेति प्रोक्तः। स्वानुभूत्या महात्मभिः तीरमानं मया।" किस स्थान पर है उसका नाम हिमालय है। यह अर्थ मन में धारण करके ही कालिदास ने अंबा के अनुग्रह से, पूर्णतया अनुभव द्वारा 'कुमार सभव" के प्रथम श्लोक में कहा है— "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवातात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।" देवतात्मा(अर्थात् जड़ शक्ति नहीं) ऐसा हिमालय कहलाया है। "मेनेति निश्चिता बुद्धिः मेनेत्येवं प्रकीर्त्यते" इस तरह तू नहीं' ऐसा कहने जो बुद्धि उत्पन्न होती वह ही मेना है।

माया के सम्बन्ध के अतिरिक्त, अहंकार, ममकार के अतिरिक्त जो है वह ही ब्रम्हशक्ति का आविर्भाव है इसके अतिरिक्त "उमा हैमवतीं बहुशोभमानं" ऐसा केनोपनिषद् में कहा है।

एक बार देवताओं को यह अहंकार हुआ कि "मैं बड़ा हूँ" तब अहंकार को मारने के लिए अंबा ने यक्ष का रूप लेकर अग्नि, वायु, चन्द्र इत्यादि को अहंकार से दबा दिया। तव इन्द्र सामने आये तो अंबा अदृश्य हो गई। इन्द्र ने अहंकार को त्याग कर माता समझकर प्रार्थना की। माता ने इन्द्र को दस हजार वर्षों तक तप करने के लिए कहा। इस तरह इन्द्र ने तप किया, तब माता ने इन्द्र को तप के कारण दर्शन किये।

उमा अर्थात् संख्या शास्त्रानुसार ५०, अर्थात् ५० मातृकाक्षर गिने जाते हैं। अक्षर अर्थात् अविनाशी, (नाश विना) का ब्रम्ह एक ही है। अदृश्य ब्रम्ह केनोपनिषद् में देखो-- ऐसा शास्त्र का कथन है।

महान् शिवानुभूति का अनुभव करने वाले "अय्यावारु" ने इस प्रकार कहा कि शिव शक्तिमय ज्ञान प्राप्त होता है तव अज्ञान का नाश हो जाता है। अय्यावारू का चरित्र संक्षेप में निम्नानुसार है।

अय्यावारू और बोधेन्द्र समवयस्क थे। वे शिवभक्त थे, तो बोधेन्द्र रामभक्त। बोधेन्द्र कामकोटि पीठाधिपति थे। अय्यावारू मैसूर के प्रधान मंत्री थे। उनका नाम श्रीधर वेंकटेश था। राजा की सेवा से विरक्त होकर वे तिरवन निलूंर आकर रहे। एक बार समय तिरवन निलूंर में अनेकों विद्वान रहते थे। एक समय अय्यावारू के घर में पिता के श्राद्ध दिन रसोई बन रही थी। घी की सुगंध खूब आ

रही थी। तब घर के पीछे एक चांडाल कुटुम्ब ने चार कुत्तों के साथ आकर कहा– "स्वामी मैं भूखा हूँ। मैं भूखा हूं।" तब अय्यावारू ने अपनी पत्नी को बुलाकर जो रसोई थी, वह सब चांडाल के कुटुम्ब एवं चारों कुत्तों को देने को कहा। उसकी पत्नी ने पति के आदेशानुसार सारी रसोई चांडाल कुटुम्ब एवं चारों कुत्तों को दे दी। सारी रसोई लेकर चांडाल सपरिवार अदृश्य हो गया। अय्यावारू ने गृहशुद्धि करवा कर, स्नान करके फिर से रसोई वनवाई एवं आमंत्रित ब्राम्हणों को बुलाया। उन लोगों ने कहा कि "हम नहीं आवेंगे। श्राद्ध निमित्त बनाई गई रसोई, तुमने चांडाल को दे दी, अतः अब हम नहीं आवेंगे।

ऐसा कहने पर अय्यावारू ने कहा कि उन्हें क्या प्रायश्चित करना चाहिए ? ब्राम्हणों ने कहा— "गंगाजल से घर शुद्ध करके, गंगा में स्नान करके, गंगाजल में रसोई बनाओ, तो हम आवेंगे।" तब अय्यावारू ने कहा–– "ब्राम्हणों यह तो बहुत ही असम्भव है। गंगा कहाँ हैं ? हम कहाँ हैं ? दक्षिण देश के कोने में हम रहते हैं। गंगा उत्तर देश में है। अतः आप ने कहा है वह कैसे सम्भव हो सकता है ? ब्राम्हणों ने कहा— "ऐसा नहीं करोगे, तब तक हम नहीं आवेंगे।" अय्यावारू ने दुःखी होकर अपने कुएं के पास जाकर गंगा देवी की श्लोकात्मक प्रार्थना की। तब गंगा उस कुएं में प्रगट हुई। तब अय्यावारू ने मोहल्ले को परिशुद्ध किया। अय्यावारू ने स्वयं के कुटुम्ब के साथ स्नान करके, घर शुद्ध करके, गंगाजल से रसोई वनाई। श्राद्ध का आरम्भ किया। श्राद्ध चलता रहा। ब्राम्हणों को अय्यावारू के वचन एवं ब्राम्हणों के प्रतिवचन सुनकर आश्चर्य हुआ। मध्यार्जुन में भगवान महालिंगम परमेश्वर ने स्वयं ब्राम्हण के स्वरूप में आकर भोजन किया। यह घटना चार सौ वर्ष पूर्व की है। आज

तिरुवल्ल निर्लू र में अय्यावारू के घर में कुएं में कार्तिक महीने की अमावस्या को गंगा का आगमन होता है। ब्राम्हण स्नान करके वहां तर्पण आदि श्राद्ध करते हैं। इन अय्यावारू ने अनेको श्लोक लिखे हैं, उनमें एक पद्य इस प्रकार हैं।

"शिववामविभाविते‌ऽन्तरंगे, महाधिज्योतिषि मानिनी मदर्थम्।
दुरितान्यपयान्ति दूरदूरे मुहुरायान्ती महान्ती मंगलानि।"

इस श्लोक का अर्थ-- "अर्धनारीश्वर स्वरूप, सगुण साकार सगुणनिराकार अर्थात् शिव स्वरूप अर्थात् शि=५, वा ४,=५+४ =९ शक्तिचक्र एवं शिवचक्र– दोंनों मिलने पर श्रीचक्र होता है। महति ज्योतिषि = निराकार इस तरह सगुण-साकार के साथ सगुण-निराकार होता है। ऐसे शिव का अंतर में ध्यान करने की भावना से पाप का नाश होता है एवं मंगल होता है। अतः शिव-शक्ति मय इस देवता का अभेद रूप से ध्यान करने से अनेक जन्मों में किये हुए पापों के समान अज्ञान का नाश होकर मोक्ष प्राप्त होता है।

"श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः" ऐसा तंत्र में कहा गया है। अतः शिव-शक्ति मय होने से श्रीचक्र की आराधना करके मोक्ष प्राप्त करना चाहिये। श्रीविद्या का अर्थ संख्याशास्त्र के अनुसार '१४२' है। १४२ अर्थात् ४२ में १ मिलाने से ४२+१=४३ इस तरह ४३ त्रिकोण हैं। १४२ में १४+२=१६ यह सोलह श्रीचक्र की अधिष्ठात्री षोडशी स्वरूप श्री विद्या कहलाती है। यह विषय विस्तार से आगे संख्या-शास्त्र में लिखा गया है।

शिवशक्ति मय ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। अतः शैव लोग विभूति एव कंकु एवं वैष्णव लोग तिरूमल (लम्बा तिलक) दोनों ओर

सफेद ओर मध्य के बीच में लाल तिलक करते है। संसार में वस्तु की अंतिम स्थिति सफेद भस्म है। श्वेत वर्ण शिव है। कुंकुम शक्ति है। वैष्णव तिलक में दो सफेद रेखा के मध्य में लाल तिलक ये शिव शक्ति है। विभूति अर्थात् भस्म। शरीर भी अंत में भस्म बनने वाला है। उसके दरम्यान शिव शक्ति के ऐक्य का ज्ञान मिले, उसके लिए विभूति कुंकुम धारण किया जाता हैं। उसी तरह सफेद माटी [तिरूमल] है। यह शरीर भी अंत में मिट्टी में मिलने वाला है। अतः तब तक शिव शक्ति का ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। अतः तिरूमल एवं लालवर्ण से उर्ध्वपुंड्र धारण करते हैं।

महान् अप्पय्य दीक्षित ने 'रत्नत्रय परीक्षा" ग्रन्थ में शिव, शक्ति, विष्णु ये तीनों देवता भिन्न-भिन्न नहीं बताये जा सकते हैं ऐसा कहा है। शिव के वाम भाग में भगवती है। अतः पार्वती परमेश्वर है। शिव की बायीं ओर विष्णु होने से शंकरनारायण कहलाते हैं। इस विषय को लक्ष्य में रखकर ही महान् कवि कालिदास ने रघुवंश काव्य में कहा है :—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे, पार्वती परमेश्वरौ॥"

"पार्वती परमेश्वरौ" कहने पर पार्वती =५, परमेश्वर= पार्वती पति शिव एवं रमापति विष्णु कहे गये हैं। यह देखते हुए जगत् शिव-शक्ति मय ही है, यह स्पष्ट दिखता है। "एकमेव अद्वितीयं ब्रह्म।" ब्रह्म एक ही है, ऐसा निश्चित ही अद्वितीय अर्थात् दो नहीं एक है, ऐसा ज्ञात होता है। एक ही अर्थात शिव, शक्ति यह दो दीखने पर भी एक ही हैं, दो नहीं है, ऐसा लगता है।

गर्भगृहम्

गर्भगृह अर्थात् गर्भाशिय में जीव १० महिने है। रहता (करूपै= गर्भाशिय) नाम रूप के बिना, अपने भक्तों के रक्षाणार्थ रचित मंदिर को गर्भगृह कहते हैं। [करूअरै=गर्भगृह] जीव जहाँ रहता है, उस गर्भाशिय एवं देव के रहने के मंदिर में भेद है या नहीं ? जीव गर्भाशिय में दस माह रहकर पृथ्वी पर जन्म लेता है। देवों के रहने के मंदिर में हजार वर्ष देवता रहते हैं। गर्भ अर्थात् संख्याशास्त्र के अनुसार ४३।४३ त्रिकोण का श्रीचक्र है। "श्रीचक्र शिवयोर्वपुः' के अनुसार शिव का शरीर है। गायत्री से, भर्गः के पद से, भर्ग की संख्या ४३ है। इस गर्भ का अर्थ महाप्रकाश होता है। यह महा प्रकाश भक्त का रक्षण करने के लिए भर्ग पद में परिवंतन करके गर्भ [मंदिर का] पद हुआ है। अ+उ+मकार वाच्य ब्रह्म उ=म=अ क्रम से उमा होता है। मंदिर में रहा हुआ गर्भगृह श्रीचक्र रूप है। शिव-शक्ति स्वरूप ब्रह्म जिसका नाश नहीं होता, वह सदा विद्यमान है।

जीव को धारण करने वाली सगर्भा स्त्री, मंदिर में रहे हुए गर्भगृह में श्रीचक्र रूप शिव-शक्ति स्वरूप है। वैसे ही सच्चिदानन्द स्वरूपिणि ब्रम्ह-शक्ति मंदिर में स्थित ब्रम्हशक्ति को देवी कहते हैं। उसी तरह स्त्री गर्भ में रहे हुए को जीव कहते हैं। संख्याशास्त्र के

अनुसार— देव=देवी=४८ उसी तरह जीव=४८ है। यह देवो कहलाने से ब्रम्हशक्ति कहलाती है। इस विद्या की वासना से जीव होता है। ऐसा भगवत् पादाचार्य ने कहा है। "जीवो ब्रम्हैव नापरः। जीवो देवः सनातनः।" जीव ही ब्रम्हशक्ति है, ऐसा निश्चय ही महापुरुषों ने कहा है। परमेश्वर द्वारा कहा गया रुद्र है। चमक अम्बा द्वारा कहा है। इस चमक के अंतिम अनुवाक् में 'एकाचमे' से शुरु करके संख्या पूरी होने तक "अष्टाचत्वारिंशत् चमे" पर्यन्त अच्छी तरह विचार करने पर–४८ होते हैं। यह क्यों कहा गया है? कारण यह है कि ४८ को जोड़ने से जीव भाव प्रगट होता है एवं उसके नीचे नहीं है। इस ४८ का अर्थ देवी होता है उससे विशेष सर्वोपरि कुछ नहीं है। ब्रम्हशक्ति बताने वाले श्रीगुरु का ४८ अक्षर का पीठ है। अक्षर अर्थात् जिसका नाश नहीं है वह। यह अक्षर अ से अः=१६, क से त=१६, थ से स=१०। यह अक्षर तीन रेखाओं द्वारा त्रिकोण स्वरूप अपने मस्तक में एक पीठ स्वरूप है। जहाँ श्रीगुरु का स्थान है। यह देवी स्वरूप होने से भास्करराय ने 'वरिवस्या रहस्य' में कहा है कि— "अकथासन हलक्षान्तरम असाध्यमामकं ज्ञानं। मामकं एवं आनन्दमयं दधत जयन्ति गुरुश्चरणाः।" इसके अतिरिक्त सभी तंत्र में गुरुपीठ को अकथासन कहा गया है। इससे गुरुपीठ=४८ संख्या, देवी ४८, जीव=४८ संख्या होती है। इसी तरह ईश्वरः गुरुः आत्मेति मूर्तित्रय विभेदतः" के अनुसार यह महा प्रकाश तीनों भेद से स्थित है। ऐसा समझ में आता है।

देवाः पद के बदलने से वेदाः होता है। देव=महा प्रकाश। यह वेद स्वरूप अर्थात् ज्ञान रूप है। वेद=४/८४ लाख जन्म योनिं कहलाती है। यह सब प्रस्थानत्रय गीता, ब्रम्हसूत्र एवं उपनिषद्

में वर्णित है। यह श्री भगवान् पादाचार्य ने भाष्य में उल्लेखित किया है। इन भाष्यों का गुरुमुख द्वारा उपदेश लेते समय शिष्य तीन बार कहता है– "ॐअथ" ॐकारश्च अथ शब्दश्च। द्वावैतौ ब्रम्हणः पुरा। कण्ठं भित्वा विनिर्यातो तस्मात् मांगलिकावुभौ।" इस प्रकार कहा कि प्रणव एवं अथ शब्द ब्रम्हा के कंठ का भेदन करके बाहर आये हैं। अतः ये दोनों शब्द मंगल वाचक हैं। अपने को ब्रम्हज्ञान होना चाहिए इसलिए प्रणव एवं अथ पद गुरु का स्मरण करवाता है।

इस तरह अकारादि क्षकारान्त माला को अक्षर माला कहते हैं। अक्षर प्रथम से अंतिम तक अक्षर माला कहलाते हैं। अ-क-थ इस पद के मध्य में स्थित 'क' अक्षर को छोड़कर 'अथ' कहा गया है। ऐसा क्यों कहा गया है? यह श्रीविद्या रहस्य है, मंत्र शास्त्र रहस्य है।

'अथ' वाक्य से लक्ष्य गुरु में हमें प्रणव वाचक ब्रम्हत्व का आभास होता है। अतः भाष्यकारों ने "ॐअपथ" कहा है। अकथासन में ४८ अक्षर के अन्दर पीठ में स्थित गुरु की प्रेरणा से इस विषय का ज्ञान होता है। अतः महापुरुष ग्रन्थ लिखते समय गुरु स्मरण रूपी अथ शब्द द्वारा प्रारम्भ करते हैं। गर्भगृह कहने से मंदिर का स्मरण होता है। मंदिर का स्मरण होने से तत्व का ध्यान आता है। मंदिर देवदर्शनार्थं (तामिल में–आ–समन्तात्–लीयते इति आलयः। आलय अर्थात् मंदिर) कहलाता है। ऐसा कहने से चित्त वृत्ति का लय होता है। अतः उसका नाम मंदिर (तामिल में आलय) कहलाता है।

जीव को रहने का शरीर स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण ये तीन प्रकार का होता है। इसी तरह देव मंदिर में भी स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण–तीन भेद हैं। स्थूल–अर्थात् गोपुरम्, सूक्ष्म अर्थात् मंदिर

(आलय), कारण– अर्थात् गर्भगृह। इसमें अभिप्राय का भेद है, जिन-जिन व्यक्तियों के अभिप्राय का भेद हैं उन-उन व्यक्तियों को युक्ति के अनुसार देखना चाहिए।

"रिक्त हस्तः नोपेयात् राजानं दैवतं, गुरुम्।" इसके अनुसार राजा देवता एवं गुरु के दर्शनार्थं जाते समय खाली हाथ नहीं जाना चाहिये। उसी तरह देव दर्शनार्थ जाते समय श्रीफल, केले, पान, सुपारी, पुष्प, अगरबत्ती, कपूर इत्यादि ले जाना चाहिये। यह प्रथा तामिल प्रदेश में है। अपना शरीर भी मंदिर है। इस मंदिर में आत्म-दर्शन करने के लिए, मन स्वयं के अन्तर्साधन, शुद्धमान, सत्त्वगुण से परिपूर्ण, किसी प्रकार के सम्बन्ध बिना ज्ञान होने से, मन की पूर्ति होने से त्रिपुटी के बिना अखंडाकार वृत्ति की शाँति होकर (उपशमन) अन्दर की आत्मज्योति बाहर से दिखाई देती है। यहि अंतर्मन की साधना कहलाती है।

किसी मंदिर में देवता के दर्शनार्थं में जाते समय बताये गये साधनों के प्रतिनिधि स्वरूप श्रीफल, केले, पान, सुपारी, पुष्प, अगरबत्ती, कपूर, इत्यादि ले जाते हैं। वहाँ गर्भगृह में जाते समय देव के समक्ष देवी की पूजा करने वाले गुरकल (अर्चक=पुजारी) अपने पास से वह पूजन सामग्री ले कर देवता के सान्निध्य में अपना नाम, नक्षत्र, गोत्र, पूछकर, "अमुक नाम, नक्षत्र, गोत्र वाले का सब तरह क्षेत्र कुशल हो" ऐसा संकल्प करके देव की अर्चना करते हैं। इस तरह संकल्प क्यों करना चाहिये ? गुरकल (पुजारी) अपने लिये प्रार्थना करने वाला जब देवता को इन संकल्पों के अनुसार कहता है तब देवता आप को पहिचानते हैं। ऐसा संदेह कलियुग में होता है। ऐसा संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। इसके अनेकों कारण हैं।

एक शहर में एक बड़े अधिकारी परदेश जाते हैं। फिर वापस आते हैं। तब उससे उद्योग स्थल पर फिर से परिचय करवाया जाता है। इसी तरह देव को ज्ञात होने के उपरान्त भी गुरकल (पुजारी) देवता को भक्त का गोत्र, नाम, नक्षत्र याद दिलाता है। इस तरह नक्षत्र इत्यादि में संकल्प करके नारियल आधा तोड़कर नारियल की चोटी तोड़ दी जाती है। इसका क्या अर्थ है? अर्चना करते समय हृदय किसी प्रकार के सदेह के बिना शुद्ध सत्वगुण वाला होता है। मेरी तीसरी आँख वन्द हो गई थी, वह खुल गई है, ऐसा नारियल का तत्व समझा है। केले को छीलने का अर्थ यह है कि 'मेरा मन अच्छा पक गया है, ऐसा बताता है। विना चूने के पान का निवेदन नहीं किया जाता है। चूना लगाकर पान का निवेदन करना चाहिये—

"पूगीफलसमायुक्त" नागवल्लीदलैर्युतम्।
कर्पूर चूर्ण संयुक्तं तांबूलं प्रतिगृह्यताम्।"

पान सुपारी निवेदन करते समय ऊपर कहा गया श्लोक बोला जाता है। कर्पूर चूर्ण संयुक्त अर्थात् भीमसेनी कपूर मिला हुआ चूना कत्था, पान, सुपारी साथ में निवेदन करना चाहिए। महापुरुष देवी की पूजा करते समय चूना लगाकर पान बीड़ा निवेदन करते हैं। चूने को संस्कृत में सुधा कहते है। सुधा अर्थात् [अमृत] पान सुपारी चूना ये 'त्रिपुटी' कहलाता है। त्रिपुटी अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय। ज्ञाता अर्थात् जानने वाला, ज्ञान अर्थात् जानना, ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य। इन तीनों का भेद के विना ऐक्य होने से अखंडाकार वृत्ति होती है। अखंडाकार वृत्ति का गुण लाल है। पान में चूना लगाकर, सुपारी के साथ में मुख में रखने से, अच्छी तरह चबाने से यह तीनों

एक रस होने से लाल होता है। अतः चूने के विना पान निवेदन नहीं करना चाहिऐ। ऐसा कहा जाता है। इस तरह निवेदन करने के बाद कर्पूर बताया जाता है। यह कर्पूर जलने से उसमें शेष नहीं रहता है। ऐसा पहले कहा गया है कि अखडाकार वृत्ति स्वयं के शरीर में उत्पन्न होती है। उस समय एकाकार होता है। कर्पूर दिखाने के बाद उसे तुरन्त आँखों पर लगाया जाता है। इसका तत्व क्या है? कर्पूर आँख द्वारा आत्मा ज्योति में मिलाई जाती है। "सूर्य अपनी आँख में है। आँख हृदय में है। हृदय मेरे पास है। मैं अमृत हूँ अमृत ब्रह्म में है। —"ऐसा वेद वाक्य है। बाहर की कर्पूर ज्योति आँख में देवता सूर्य ज्योति के समान आत्म ज्योति बताती है।

तामिऴ देश में मान्यता है कि जिस गाँव में मंदिर नहीं हो वहाँ नहीं रहना चाहिये। मंदिर वाले गाँव में रहने से देव दर्शन हो सकते है। वहां आत्म ज्ञानियों और महापुरुषों का सत्संग का लाभ प्राप्त होता है। देवी-देवताओं के आशीर्वाद से शीघ्र ही आत्म-ज्ञान की प्राप्ति कर सकते हैं।

शिवालय में प्रदक्षिणा करने की रीति —

"वृषं चंडं वृषं श्चैव सोमसूत्रं पुनर्वृषम्।

चंडं च पुनः चंडं पुनश्चपुनः वृषम्।" इसके अनुसार शिव मंदिर में स्थित पहले नन्दीकेश्वर के दर्शन करना चाहिये। फिर शिव के के ईशान भाग में स्थित भगवान चंडीकेश्वर के दर्शन करना चाहिये। फिर वृषभ के पास आकर प्रदक्षिणा की रीति के अनुसार शिव की बायीं ओर सोमसूत्र [जहाँ अभिषेक जल गिरता है] की जगह प्रदक्षिणा करके फिर नन्दीकेश्वर के पास जाकर फिर सोमसूत्र फिर चंडीकेश्वर फिर वृषभ की जगह जाना यह एक प्रदक्षिणा होती है।

माई

माई अर्थात् माँ, ये उत्तम देवता है। भक्तों को कल्याण करने वाली देवी हैं। वे इस जगत् की सृष्टि करके रक्षण करती हैं संहार करती हैं। माँ का पूर्ण श्रद्धा से हम स्मरण करें, तो माँ हमें भोग, मोक्ष प्रदान करके हमारा कल्याण करती है।

"जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं है, जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं है।"

किन्तु महात्रिपुर सुन्दरी एवं उसके उपासकों में भेद न होने से, उपासको के भोग एवं मोक्ष दोनों हाथों में होते हैं, ऐसा तंत्रों में कहा गया है।

"आराधिता सैवनृणां भोग स्वर्गापवर्गदा" ऐसा मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख किया गया है। माता की उपासना करने से वह, भोग, स्वर्ग, मोक्ष (अपवर्ग) देती है। भोग का अर्थ इस लोक में किसी प्रकार की याचना किये बिना स्वयं की इच्छित वस्तु, धन सोना, वाहन इत्यादि प्राप्त करना। स्वर्ग अर्थात् देवलोक में अनुभव हो, इस तरह का सुख। अपवंग अर्थात् इकट्ठा किये बिना, ऐसा पंडितों कथन है। अर्थात् पवर्ग के अतिरिक्त। पवंग का अर्थ—

"पंचत्वं फलं बन्ध्वाश्च भयं च ममतापिचा।
पंचैते यत्र नो संति सोऽपवर्गः प्रकीर्तितः।"

पंचत्वं अर्थात् मरण; मरण नहीं जन्म भी नहीं। फल का अर्थ- पुण्य पाप भय=भय, बंध=बंधन वांधना, ममता=मेरा अहंकार इत्यादि जहाँ नहीं है. वह अपवर्ग कहलाता है। यह पवर्ग कभी भी न हो तब भी अपवर्ग अर्थात् मोक्ष कहलाता है। अन्य सब एक ही स्थान में कहे गये पवर्ग कीं मूर्ति, अपवर्ग प्रदान करती है, ऐसा कहा जाता है।–"पिनाक फणि वालेन्दु भस्म मंदाकिनी युता।"

पवर्ग स्त्रीता पवर्ग रचिता मूर्तिः अपवर्ग प्रदायिनी।" यह श्लोक समयोचित पद मालिका की पुस्तक में मिलता है। पिनाक= धनुष, फणि=सर्प बालेन्दु=वालचंद्र, भस्म=विभूति, मंदाकिनी= गंगा इन पाँचों से बनी हुई मूर्ति अपवर्ग नामक मोक्ष प्रदान करती है।

"रत्नत्रय परीक्षा" ग्रन्थ में श्री अप्पय दीक्षित ने बतलाया है कि शिव-शक्ति विष्णु ये रत्न भिन्न-भिन्न कहलाते हैं, किन्तु फिर भी ये एक ही हैं। उन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता है।

सन्यासी को किसी प्रकार के बन्धन नहीं होते हैं। उनके लिए प्रणव ही एकमात्र गति है। ऐसा कहा जाता है कि सन्यासी मन में चित्शक्ति भगवती की स्वयं से अभेद रूप से भावना करते हैं। वे विभूति, रूद्राक्ष इत्यादि शैव चिन्हों को धारण करते हैं। जब कोई उन्हें प्रणाम करते हैं तब वे नारायण का नाम लेते हैं। ऐसा क्यों करते हैं? ये तीनों एक ही हैं। यही पर ब्रह्म वाचकमान ओमकार का लक्ष्य दिखाता है। जैसे तिल्ली में तेल है, दही में जैसे घी है, जल प्रवाह में जल है, काष्ठ में जैसे अग्नि है, वैसे ही शिवशक्तिमय ब्रह्म जगत में रहकर प्रकाश प्रदान करता है।

शुभकार्य में कंकु-हल्दी से रंगे हुए अक्षत महापुरुष उपयोग में लेते हैं। कंकु-हल्दी शक्ति है, अक्षत शिव है। अ+क्षत=जो पूर्ण स्वरूप शिव है वह। पूजा के समय अद्वैत ऐसे शुद्ध अक्षत का ही उपयोग करते हैं। यह सदाशिव का अस्तित्व रहना ही चाहिए, ऐसा समझते हैं। पितृ कार्य में लाल वर्ण के तिल, श्वेत वर्ण के अक्षत मिलाकर कितने ही महापुरुष तर्पण करते हैं।

वेंकटाचलपति की समाराधना के समय दीप आराधन करते समय कितने ही महापुरुष तिल और अक्षत को समान भाग में लेकर कपड़े में बाँधकर घी के दीप में, दीप की बाती के समान उपयोग में लेते हैं। हम अच्छी तरह जगत् को देखें तो प्रत्येक कार्य शिव-शक्तिमय है। ऐसा ज्ञान अच्छी तरह होता है।

गर्भगृह में स्थापित मूर्ति को बाहर नहीं लाया जा सकता है। अतः इस मूर्ति की अन्य चलन मूर्ति होती है। उसे उत्सव मूर्ति कहते हैं। कहने पर भी स्थापित मूर्ति एवं उत्सवमूर्ति में भेद नहीं है। इस उत्सव मूर्ति को भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये गाँव में घुमाते हैं। उत्सव मूर्ति बाहर निकलती है, तब उसे उठाकर लोग मृदंग-वाद्य आदि बजाकर विमान,छत्र, पालकी, साथ-साथ में उठाकर मोहल्ले-मोहल्ले गाँव-गाँव घूमकर कर भक्तों पर अनुग्रह करवाते है। उत्सव अर्थात् महान योग। मूलम्=स्थापित देव, आमेर=सूखा हुआ लकड़ी का टुकड़ा। आमेर आँख में दिखाई नही देता। फल शाखायें, फूल, पत्र इत्यादि बहुत विस्तार से अपने को दिखते हैं। मूलवर का अर्थ है नाम। उत्सव ऐसा नाम कहलाता है।

कामाक्षी विलास में महात्रिपुर सुन्दरी को ही कामाक्षी कहा गया है। यह ही ब्रम्ह है। अतः यह कामाक्षी, कामकोटि पीठ में

स्थित श्री महात्रिपुर सुन्दरी की ज्योति स्वरूप पूर्ण शक्ति द्वारा तपवेश में स्थित कामाक्षी है। इस कामाक्षी का एक अंश स्वरूप स्वर्ण कामाक्षी में कल्याण स्वरूप है। एकाम्बर अर्थात् ज्योतिर्लिंग में निर्गुण शिव स्वरूपिणी कामाक्षी है। एकाम्बरनाथ के नाम से लिंगमूर्ति सगुण शिव स्वरूपिणी स्वयं का अर्ध शरीर बिम्ब स्वरूप है। वरधराज पेरूमाल के पास पुरुष—स्वरूपिणी है। इस तरह ६ प्रकार के भेद सहित (कामाक्षी,स्वर्ण कामाक्षी, एकाम्बर, एकाम्बरनाथ तप कामाक्षी, वरधराज पेरूमल) कामाक्षी है।

शक्ति के तीन अंश, शिव के दो अंश, विष्णु का एक अंश होता है। अतः शक्ति, शिव, विष्णु तीनों एक ही हैं। सन्यासी शक्ति अंश की मन में भावना करते हैं। शिव चिन्ह धारण करते हैं। वे विष्णु का नाम बोलते हैं। परम अद्वैत सन्यासी यह विषय लोगों को अच्छी तरह बता सकते हैं सन्यास धारण करने वाले व्यक्ति स्वभाव से ही शिव स्वरूप होते हैं। वे मुंडन करवाकर विभूति, रूद्राक्ष, धारण करके भगवे वस्त्र पहिनते हैं। सन्यासी श्वेत वस्त्र नहीं पहिन सकते हैं। भगवे वस्त्र (लाल) यह भगवती का चिन्ह है। सन्यासी कपाल में कंकु का तिलक धारण करते हैं। यह शिव-शक्ति का स्वरूप ही बतलाते हैं।

शिव-शक्ति की ऐक्यता का ज्ञान बतलाने के लिए महापुरुषों ने संक्षेप में बताया है। श्री पंचक, संख्या शास्त्र, शिव शक्तिमय जगत्, गर्भगृह, माई इन विषयों का शास्त्रीय अध्ययन, श्रीविद्या का रहस्य, भास्करराय का संक्षित चरित्र यह सब भगवती स्वरूप श्रीगुरु के अनुग्रह से बुद्धि अनुसार मैंने लिखा है। मेरा अल्प ज्ञान होने से गल्तियां हुई होंगी। यह विषय जानने वाले, महानुभाव मेरी भूलों

को क्षमा करके, हंसक्षीर न्यायानुसार, अच्छा हो वह ग्रहण करके, ऐसा अनुग्रह करें कि मुझे परिपूर्ण सच्चिदानन्द ब्रम्हमय पर देवता का ज्ञान प्राप्त होकर,पुनर्जन्म न मिले मोक्ष प्राप्त हो। महानुभावों के चरण कमलों में विचरण बुद्धि से बंदन करता हूँ।

अष्टांग रीति के अनुसार — ख सदाशिव युगे, थं त्वक तत्व परिवृत्ते, थं त्वकतत्ववर्षे, ऐं ज्योत्सना कला मासे ढं बुध्दितत्वदिने लृं कृष्णादिने नित्यातिथि तंथंदंधनं पूर्णानन्द वासरे अकार घटि कोदय। भाद्रपद कृष्णपक्षे त्रयोदशीपरंचतुर्दशी बुधवासरे सौम्य वासरे ता. १९ सितम्बर १९७९ गुहानन्दमण्डली, स्थापकतदध्यक्ष श्री चिदानन्दनाथ-पाद कमलरेणु अनन्तानन्दनाथ (स्वामी शास्त्री)

॥ शिवार्पणम् ॥

शुभं भवतु ॥

शुभं भवतु ॥

श्रीवल्लभमहागणपति त्रिशती नामावली

ध्यान श्लोक

बीजापुरगदेक्षुकार्मुकरुजा चक्राब्जपाशोत्पल
 व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलश प्रोद्यत्करांभोरुहः ।
ध्येयो वल्लभया सपद्मकरयाश्लिष्टोज्जलद्भूषया
 विश्वोत्पत्ति विपत्ति संस्थिति करोविघ्नो विशिष्टार्थदः ॥
मूषिकवाहन मोदकहस्त चामरकर्ण विलंबितसूत्र
 वामनरूप महेश्वरपुत्र विघ्न विनायक पाद नमस्ते ।

ओं ओंकार गणपतये नमः
ओंकार प्रणवरूपाय ,,
ओंकार मूर्तये ,,
ओंकाराय ,,
ओंकार मन्त्राय ,,
ओंकार बिन्दुरूपाय ,,
ओंकार रूपाय ,,
ओंकार नादाय नमः
ओंकार मयाय नमः
ओंकार मूलाधारवासाय ,, १०
श्रींकार गणपतये नमः
श्रींकार वल्लभाय नमः
श्रींकाराय नमः
श्रींलक्ष्म्यै नमः
श्रीं महागणेशाय नमः
श्रीं वल्लभाय नमः
श्रीं गणेशाय नमः
श्रीं वीर गणेशाय नमः
श्रीं वीर लक्ष्म्यै नमः
श्रीं धैर्य गणेशाय नमः २०
श्रीं वीर पुरेन्द्राय नमः
ह्रींकार गणेशाय नमः
ह्रींकार मयाय नमः
ह्रींकार सिम्हाय नमः

ह्लींकार बालाय नमः
ह्लींकारा पीठाय नमः
ह्लींकारा रूपाय नमः
ह्लींकार वर्णाय नमः
ह्लींकार कलाय नमः
ह्लींकार लयाय नमः ३०
ह्लींकार वरदाय नमः
ह्लींकार फलदाय नमः
क्लींकार गणेशाय नमः
क्लींकार मन्मथाय नमः
क्लींकाराय नमः
क्लींमूलाधाराय नमः
क्लीं वासाय नमः
क्लींकार मोहनाय नमः
क्लींकारोन्नत रूपाय नमः
क्लींकार वश्याय नमः ४०
क्लींकार नाथाय नमः
क्लींकार हेरंबाय नमः
क्लींकार रूपाय नमः
ग्लौं गणपतये नमः
ग्लौंकार बीजाय नमः
ग्लौंकाराक्षराय नमः
ग्लौंकार बिन्दुमध्यगाय नमः
ग्लौंकार वासाय नमः
गं गणपतये नमः
गं गणनाथाय नमः ५०

गं गणाधिपाय नमः
गं गणाध्यक्षाय नमः
गं गणाय नमः
गं गगनाय नमः
गं गंगाय नमः
गं गमनाय नमः
गं गानविद्याप्रदाय नमः
गं घंटानादप्रियाय नमः
गं गकाराय नमः
ओं गणपतये नमः ६०
ओं गजमुखाय नमः
ओं गजहस्ताय नमः
ओं गजरूपाय नमः
ओं गजारूढाय नमः
गजारूढाय नमः
गजाय नमः
गणेश्वराय नमः
गन्ध हस्ताय नमः
गर्जिताय नमः
गताय नमः
गं वाहाय नमः ७०
णकार गणपतये
णळाय नमः
णळिंगाय नमः
णळप्रियाय नमः
णळेशाय नमः

णळकोमळाय नमः
णकरीशाय नमः
णकरिकाय नमः
णणणंकाय नमः
णणीशाय नमः ८०
णणीणप्रियाय नमः
परब्रह्माय नमः
परहन्त्रे नमः
परमूर्तये नमः
पराय नमः
परमात्मने नमः
परानन्दाय नमः
परमेष्ठिने नमः
परात्पराय नमः
पद्माक्षाय नमः ९०
पद्मालयापतये नमः
पराक्रमिणे नमः
तत्व गणपतये नमः
तत्व गम्यायः नमः
तर्क वेत्रे नमः
तत्वविदे नमः
तत्व रहिताय नमः
तमोहिताय नमः
तत्वज्ञानाय नमः
तरुणाय नमः १००
तरुणि भ्रूज्ञाय नमः
तरणि प्रभाय नमः
यज्ञगणपतये नमः
यज्ञकाय नमः
यशस्विने नमः
यज्ञकृते नमः
यज्ञाय नमः
यमभीति निवर्तकाय नमः
यमहृतये नमः
यज्ञफलप्रदाय नमः ११०
यमाधाराय नमः
यमप्रदाय नमः
यथेष्ट वरप्रदाय नमः
वरगणपतये नमः
वरदाय नमः
वसुधापतये नमः
वज्रोद्भवभयसंहर्त्रे नमः
वल्लभा रमणीशाय नमः
वक्षस्थल मणिभ्राजिने नमः
वज्र धारिणे १२०
वश्याय नमः
वकार रूपाय नमः
वशिने नमः
वरप्रदाय नमः
रज गणपतये नमः
रजकराय नमः
रमानाथाय नमः

रत्नाभरण भूषिताय नमः
रहस्यज्ञाय नमः
रसाधाराय नमः १३०
रथस्थाय नमः
रथावासाय नमः
रंजित प्रदाय नमः
रवि कोटि प्रकाशाय नमः
रम्याय नमः
वरद वल्लभाय नमः
वकाराय नमः
वरुणप्रियाय नमः
वज्रधराय नमः
वरद वरदाय नमः १४०
वन्दिताय नमः
वश्यकराय नमः
वदनप्रियाय नमः
वसवे नमः
वसुप्रियाय नमः
वरदप्रियाय नमः
रविगणपतये नमः
रत्नकिरीटाय नमः
रत्नमोहनाय नमः
रत्नभूषणाय नमः १५०
रत्नकाय नमः
रत्न मन्त्रपाय नमः
रसाचलाय नमः

रसातलाय नमः
रत्नकंकणाय नमः
रवोधीशाय नमः
रवापानाय नमः
रत्नासनाय नमः
दकाररूपाय नमः
दमनाय नमः १६०
दण्डकारिणे नमः
दयाधमिताय नमः
दैत्यगमनाय नमः
दण्डनीत्यदि विज्ञात्रे नमः
दया वहाय नमः
दक्षध्वंसनकराय नमः
दक्षाय नमः
दतकाय नमः
दमोजघ्नाय नमः
सर्ववश्यगणपतये नमः १७०
सर्वात्मने नमः
सर्वज्ञाय नमः
सर्व सौख्य प्रदायिने नमः
सर्व दुःखघ्ने नमः
सर्व रोग हृते नमः
सर्व जनप्रियाय नमः
सर्व शास्त्र कलापधराय नमः
सर्व दुःख विनाशाय नमः
सर्वदुःख प्रशमनाय नमः

जय गणपतये नमः १८०
जनार्दनाय नमः
जपाराध्याय नमः
जगन् मान्याय नमः
जयावहाय नमः
जन पालाय नमः
जगत् सृष्टये नमः
जप्याय नमः
जन लोचनाय नमः
जगती पालाय नमः
जयन्ताय नमः १९०
नटन गणपतये नमः
नद्याय नमः
नदीश गंभीराय नमः
नत भू देवाय नमः
नष्टद्रव्य प्रदायकाय नमः
नयज्ञाय नमः
नमितारये नमः
नन्दाय नमः
नटविद्या विशारदाय नमः
नवत्यानां संत्रात्रे २००
नवांबर विधारणाय नमः
मेघ डंबर गणपतये नमः
मेघ वाहनाय नमः
मेरु वासाय नमः
मेरु निलयाय नमः

मेघ वर्णाय नमः
मेघ नादाय नमः
मेघ डंबराय नमः
मेघ गर्जिताय नमः
मेघ रूपाय नमः २१०
मेघ घोषाय नमः
मेष वाहनाय नमः
वश्य गणपतये नमः
वज्रेश्वराय नमः
वरप्रदाय नमः
वज्रदंताय नमः
वश्यप्रदाय नमः
वश्याय नमः
वशिने नमः
वटुकेशाय नमः २२०
वराभयाय नमः
वसुमते नमः
वटवे नमः
शरगणपतये नमः
शर्मधाम्ने नमः
शरणाय नमः
शर्मवद्वसुघनाय नमः
शरधाराय नमः
शशिधराय नमः
शतक्रतु वरप्रदाय नमः २३०
शतानन्दादि सेव्याय नमः

शमित देवाय नमः
शराय नमः
शशिनाथाय नमः
महाभय विनाशनाय नमः
महेश्वर प्रियाय नमः
मत्तदण्डकराय नमः
महाकीर्तये नमः
महा भुजाय नमः
महोन्नतये नमः २४०
महोत्साहाय नमः
महामायाय नमः
महामदाय नमः
महाकोपाय नमः
नाग गणपतये नमः
नागाधीशाय नमः
नायकाय नमः
नाशितारातये नमः
नामस्मरण पापघ्ने नमः
नाथाय नमः २५०
नाभिपदार्थ पद्मभुवे नमः
नागराज वल्लभप्रियाय नमः
नाट्य विद्या विशारदाय नमः
नाट्य प्रियाय नमः
नाट्य नाथाय नमः
यवन गणपतये नमः
यमवीषूदनाय नमः
यमवीजिताय नमः
यज्वने नमः
यज्ञपतये नमः २६०
यज्ञनाशनाय नमः
यज्ञप्रियाय नमः
यज्ञवाहाय नमः
यज्ञांगाय नमः
यज्ञसखाय नमः
यज्ञप्रियाय नमः
यज्ञरूपाय नमः
यज्ञ वन्द्याय नमः
यति रक्षकाय नमः
यति पूजिताय नमः २७०
स्वामि गणपतये नमः
स्वर्ण वरदाय नमः
स्वर्ण कर्षणाय नमः
स्वाश्रयाय नमः
स्वस्तिकृते नमः
स्वस्तिकाय नमः
स्वर्णकक्षाय नमः
स्वर्ण ताटंक भूषणाय नमः
स्वाहा सभाजिताय नमः
स्वरशास्त्रस्वरूपकृते „ २८०
हार्दि विद्याय नमः
हार्दि रूपाय नमः
हरिहर प्रियाय नमः

हरण्यादि पतये नमः
हाहा हूहू गणपतये नमः
हरि गणपतये नमः
हाटक प्रियाय नमः
हतगजाधिपाय नमः
हयाश्रयाय नमः
हंस प्रियाय नमः २९०
हंसाय नमः
हंस पूजिताय नमः
हनुमत सेविताय नमः
हकार रूपाय नमः
हरिस्तुताय नमः
हरांक वास्तव्याय नमः
हरिनींलप्रभाय नमः
हरिद्राबिंब पूजिताय नमः
हरिघ्य मुख देवता सर्वेष्ट
सिद्धिताय नमः
मूलमन्त्र गणपतये नमः ३००

श्री शिव पञ्चाक्षराष्टोत्तर शत नामावलिः

ध्यान श्लोक

मूले कल्पद्रुमस्य द्रुतकनकनिभं चारु पद्मासनस्थं
वामाङ्कारूढ़ गौरी निविडकुच भराभोम गाढ़ोपभुढ़म् ।
सर्वालंकार कान्तं वरपरशुमृगाभीति हस्तं त्रिणेत्रं
वन्दे बालेन्दुमौलिं गजवदन गुहाश्लिष्ट पार्श्वं महेशम् ॥

ओं ओंकार रूपाय नमः
ओंकाराय नमः
ओंकारपद्मनिलयाय नमः
ओंकार निलयाय नमः
ओंकार बीजाय नमः
ओंकार सुलक्षणाय नमः
ओंकार मन्त्राय नमः
ओंकार तन्त्राय नमः
ओंकार निवासिने नमः
ओंकार यन्त्राय नमः १०
ओंकार पीठाय नमः
ओंकार विभूषणाय नमः
ओंकार वाच्याय नमः
ओंकार लक्ष्याय नमः
ओंकार सुपूजिताय नमः
ओंकार वेदोपनिषदे नमः
ओंकाराध्वरदक्षिणायै नमः
ओंकार वाचमुद्दण्ड पण्डिताय ,,
ओं नकार रूपाय नमः
नद्याय नमः २०
नटराजाय नमः
नटेश्वराय नमः
ओं नारायण सखाय नमः
नाथाय नमः
नगवेषधराय नमः
[illegible] नमः

नक्षत्रमाला भरणाय नमः
नामरूपविवर्जिताय नमः
नयनाद्दृश्यरूपाय नमः
निर्मलाय नमः ३०
नन्दि वाहनाय नमः
नवग्रह स्वरूपाय नमः
नव्यहव्याग्र भोजनाय नमः
नाद प्रियाय नमः
नाद रूपाय नमः
नाम पारायण प्रियाय नमः
मकार रूपाय नमः
मन्त्रज्ञाय नमः
मन्दाय नमः
मन्मथ नाशनाय नमः ४०
मन्त्रालयाय नमः
महेशाय नमः
मयूर पुरवासिने नमः
महादेवाय नमः
ओं महानादाय नमः
महाभैरव पूजिताय नमः
महाकामेश्वराय नमः
मत्ताय नमः
मलङ्गालयाय नमः
मानसाय नम ५०
महेश्वराय नमः
महाबाहवे नमः

महायज्ञाय नमः
महानिधये नमः
शिकाररूपाय नमः
शिष्टेष्टाय नमः
शितिकण्ठाय नमः
शिवालयाय नमः
शिव रुपाय नमः
शिवानन्दाय नमः
शिखिवाहन जन्मभुवे नमः
शिवाय नमः
शिवमयाय नमः
शिष्ट पूजिताय नमः
शिवदाय नमः
शिवाय नमः
शिव योगाय नमः
शिवज्ञानिने नमः
शिवचैतन्यमानसाय नमः
शिवप्रदाय नमः ७०
शिवराध्याय नमः
शिवलालित विग्रहाय नमः
वकार रूपाय नमः
ओं वामाङ्ग सुन्दराय नमः
वायु वन्दिताय नमः
वाग्विभूतये नमः
वाम देवाय नमः
वाल्मीकि परिपूजिताय नमः

वातुलागमसवेद्याय नमः
वरिष्टाय नमः ८०
वरदायकाय नमः
वाग्विशुद्धचरित्राय नमः
वात्सल्य परमेश्वराय नमः
वरदाभयहस्ताय नमः
वरेण्याय नमः
वसुदाय नमः
वसवे नमः
वदान्याय नमः
वामनयनाय नमः
वामदेव प्रपूजिताय नमः ९०
यकार रूपाय नमः
यन्त्रज्ञाय नमः
यज्ञकर्मफलप्रदाय नमः
यज्ञप्रियाय नमः
यज्ञरूपाय नमः
यज्ञनाथाय नमः
यशः पतये नमः
यज्ञपतये नमः
यज्ञपालन तत्पराय नमः १००
यज्ञ सक्ताय नमः
यज्ञभोक्त्रे नमः
यति वेद्याय नमः
यतीश्वराय नमः
यजमानस्वरूपाय नमः
यज्ञानां फलदायकाय नमः
यजुर्वेदस्वरूपाय नमः
यक्षराजनिषेविताय नमः
ओं श्री साम्बपरमेश्वराय नमः

॥ सौभाग्याष्टोत्तरशतनामावलिः ॥

ॐ कामेश्वर्यै नमः
कामशक्त्यै ,,
कामसौभाग्यदायिन्यै ,,
कामरूपायै ,,
कामकलायै ,,
कामिन्यै ,,
कमलासनायै ,,
कमलायै ,,
कल्पनाहीनायै ,,
कमनीयकलावत्यै ,,
कमलाभारतीसेव्यायै ,,
कल्पिताशेषसंसृत्यै (१२) ,,
अनुत्तरायै ,,
अनघायै ,,
अनन्तायै ,,

ॐ अद्भुतरूपायै नमः
अनलोद्भवायै ,,
अतिलोकचरित्रायै ,,
अतिसुन्दर्यै ,,
अतिशुभप्रदायै ,,
अघहन्त्र्यै ,,
अतिविस्तारायै ,,
अर्चनतुष्टायै ,,
अमितप्रभायै (२४) ,,
एकरूपायै ,,
एकवीरायै ,,
एकनाथायै ,,
एकान्तार्चनप्रियायै ,,
एकस्यै ,,
एकभावतुष्टायै ,,

ॐ एकरसायै नमः
एकान्तजनप्रियायै "
एधमानप्रभावायै "
एधद्भक्तपातकनाशिन्यै "
एलामोदमुखायै "
एनोऽद्रिशक्रायुधसमास्थित्यै,
ईहाशून्यायै "
ईप्सितायै "
ईशादिसेव्यायै "
ईशानवराङ्गनायै "
ईश्वराज्ञापिकायै "
ईकारभाव्यायै "
ईप्सितफलप्रदायै "
ईशानायै "
ईतिहरायै "
ईक्षायै "
ईषदरुणाक्ष्यै "
ईश्वरेश्वर्यै (४८) "

ॐ ललितायै नमः
ललनारूपायै "
लयहीनायै "
लसत्तनवे "
लयसर्वायै "
लयक्षोण्यै "
लयकर्त्र्यै "
लयात्मिकायै "
लघिमायै "
लघुमध्याढ्यायै "
ललमानायै "
लघुद्रुतायै (६०) "
हयारूढायै "
हतामित्रायै "
हरकान्तायै "
हरिस्तुतायै "
हयग्रीवेष्टदायै "
हालाप्रियायै "

ॐ हर्षसमुद्धतायै ,,
हर्षणायै ,,
हल्लकाभाङ्ग्यै ,,
हस्त्यन्तैश्वर्यदायिन्यै ,,
हलहस्तार्चितपदायै ,,
हविर्दानप्रसादिन्यै (७२) ,,
रामायै ,,
रामार्चितायै ,,
राज्ञ्यै ,,
रम्यायै ,,
रवमय्यै ,,
रत्यै ,,
रक्षिण्यै ,,
रमण्यै ,,
राकायै ,,
रमणीमण्डलप्रियायै ,,
रक्षिताखिललोकेशायै ,,
रक्षोगणनिषूदिन्यै (८४) ,,

ॐ अम्बायै नमः
अन्तकारिण्यै ,,
अम्भोजप्रियायै ,,
अन्तकभयंकर्यै ,,
अम्बुरूपायै ,,
अम्बुजकरायै ,,
अम्वुजजातवरप्रदायै ,,
अन्तःपूजाप्रियायै ,,
अन्तःस्वरूपिण्यै ,,
अन्तर्वचोमय्यै ,,
अन्तकारातिवामाङ्कस्थितायै ,,
अन्तःसुखरूपिण्यै (९६) ,,
सर्वज्ञायै नमः
सर्वगायै ,,
सारायै ,,
समायै ,,
समसुखायै ,,
सत्यै ,,

सन्तत्यै	"	सर्वस्यै	"
सन्ततायै	"	सांख्यायै	"
सोमायै	"	सनातन्वैं (१०८)	"

श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः नानाविधपरिमलपत्रपुष्पाणि समर्पयामि ॥

सौभाग्याष्टोत्तरशतनामावलिः समाप्ता ॥

॥ अथ श्री चक्र भावना ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगुरु मूर्तये नमः ॥ श्री नर्मदा देव्यै नमः ॥ अथ श्री चक्र भावनांतरभ्यंतर श्रीमान् अगस्ति दुर्वासा प्रभृति महर्षिणा श्रीमच्छंकराचार्यैः षडाम्नाय रहस्य बाह्याभ्यंतर षट् चक्र विशदी करण कामेश्वरी कामेश्वर सहित अंतर्याग विधान प्रारम्भः ।

ॐ सर्व हर चक्र स्वामीत्यादि महामहाशयांत चतुः षष्ठि-रूपावरण देवता सहितं श्री परशंभवानन्द नाथ श्री परचिदांबा रूपं मिथुनं मानसे आज्ञा चक्रे ध्यायेत् ॥

अथ ध्यानं

तवाज्ञा चक्र रथं तपन शशि कोटि द्युतिधरं ॥
परंशंभुंवंदे परिमिलित पार्श्वं परचिता ॥
यमाराध्यं शक्त्या रवि शशि शुची नाम विषये ॥
निरालोके लोको निवसति हिभा लोक भवने ॥१॥
विशुद्धौते शुद्ध स्फटिक विशदं व्योमं जनकं ॥
शिवं सेवे देवी मपि शिवसमान व्यसनितां ॥

ययोः कान्त्या यान्त्याः शशि किरण सारूप्य सरणें ॥
विधूतांतध्वांता विलसति चकोरी बजगति ॥२॥

समुन्सीलत्संवित्कमलं मकरं दै करसिकं ॥
भजे "हंस" "द्वंद्वं" [किमपि महतां मानसचरं] ॥
किमपि शिवतानाहत पदम् ॥
यदा लापा दष्टा दशगुणित विद्या परिणति ॥
यदादत्ते दोषाद्गुणमखिल मद्भ्यः पय इव ॥३॥

तडित्वं तंशक्या तिमिर परिपंथि स्फुरणया ॥
स्फुरन्नाना रत्ना भरण परिणद्धें धनुषी ॥
तवश्यामं मेघं कमपि मणिपूरैक शरणं ॥
निषेवेवर्षंत हरमिहिर तत्पत्रिभुवनं ॥४॥

तव स्वाधिष्ठाने हुतवह मधिष्ठायनिरतं ॥
तमीढ़े संवर्त जननि महती तांचसमयां ॥
यदालोके लोकान् दहति महति क्रोध कलिते ॥
दयार्द्राते दृष्टिः शिशिर मुपचारं रचयति ॥५॥

तवाधारे मूले सह समययालास्य परया ॥
नवात्मानंवंदे नवरस महातांडव नटं ॥
उभाभ्यामेत्ताभ्या मुभयविधिमुद्दिश्य दयया ॥
सनाथाभ्यां जज्ञे जनक जननीमज्जगदिदं ॥६॥

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरूदसिमरुत्सारथिरसि ॥
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयिं परिणतायां नहिं परं ॥
त्वमेवस्वात्मानं परिणमयि तुं विश्ववपुषा ॥७॥

॥ इति षट्चक्र विशदी करण ध्यानं ॥ मानसैः संपूज्य ॥

ॐ श्री मद्धन्दिने शुभे देशकाले श्री श्री महामहा श्रीचक्र महाराज्ञी प्रसाद सिद्धि द्वारा नित्यानंद सिध्यर्थं तस्याः अंतर्यजन करिष्ये ॥ तत्रादौ षट् पंचाशदावरण देवताख्य स्वरूपं निर्णीयते॥ तच्च ॥ अथारंभः

ॐ त्रिपुरसुन्दरि ॥१॥ त्रिपुरसुंदर ॥२॥ हृदय देवी ॥३॥ हृदय देव ॥४॥ शिरोदेवि ॥५॥ शिरोदेव ॥६॥ शिखादेवि॥७॥ शिखादेव ॥८॥ कवचदेवि ।९॥ कवचदेव ॥१०॥नेत्रदेवि॥११॥ नेत्रदेव ॥१२॥ अस्त्रदेवि ॥१३॥ अस्त्रदेव ॥१४॥ कामेश्वरि ॥१५॥ कामेश्वर ॥१६॥ भगमालिनि ॥१७॥ भगमालिन् ॥१८॥ नित्यक्लिन्ने ॥१९॥ नित्यक्लिन्न ॥२०॥ भेरूंडे ॥२१॥ भेरुंड ॥२२॥ वह्निवासिनि ।२३॥ वह्निवासिन् ॥२४॥ महावज्रेश्वरि ॥२५॥ महावज्रेश्वर ॥२६॥ शिवादूती ॥२७॥ शिवदूत । २८॥ त्वरिते ॥२९॥ त्वरित ॥३०॥ कुलसुन्दरि ॥३१॥ कुलसुन्दर ॥३२॥ नित्ये ॥३३॥ नित्य॥३४॥ नील पताके ॥३५॥ नील पताक ॥३६॥ विजये ॥३७॥

विजय ।३८। सर्वमंगले ।३९। सर्वमंगल ।४०। ज्वाला मालिनि ।४१। ज्वाला मालिन् ।४२। चित्रे ।४३। चित्र ।४४। महानित्ये ।४५। महानित्य ।४६। परमेश्वरि ।४७। परमेश्वर ।४८। मित्रेशमयि ।४९। मित्रेशमय ।५०। षष्ठीशमयी ।५१। षष्ठिशमय ।५२। उड्डीशमयी ।५३। उड्डीशमय ।५४। चर्यानाथमयी ।५५। चर्यानाथमय ।५६।

ॐ श्री त्रिपुरसुंदर्यादि श्री चार्यानाथमप्यंतषट्पंचाशदावरण देवता सहितं श्री महातांडव नटानंदनाथ श्री लास्य समयांबारूपं मिथुनं मूलाधारे चक्रे पार्थिव पद्मे मूलस्थाने ध्यायेत् ।

"तत्ध्यानं ।"

तवाधारे मूले सह समययालास्य परया ।
नवात्मानं वंदे नवरस महा तांडव नटं ।
उभाभ्यामेताभ्यां उभय विधि मुद्दिश्य दयया ।
सनाथाभ्यां जज्ञे जनक जननीमज्जगदिदं ।

। इति मूलाधार चक्रध्यानं ।

। अथस्वाधिष्ठानावरण देवता पूजनं ।

ॐ लोपामुद्रामयि ।१। लोपामुद्रामय ।२। आगस्तिमयि ।३। अगस्त्यमय ।४। कालतापनमयि ।५। कालतापनमय

।६। धर्माचार्यमयि ।७। धर्माचार्यमय ।८। मुक्तकेशीश्वरमयि ।९। मुक्तकेशीश्वरमय ।१०। दीपकलानाथ मयि ।११। दीपकलानाथमय ।१२। विष्णुदेवमयि ।१३। विष्णुदेवमय ।१४। प्रभाकर देवमयि ।१५। प्रभाकर देवमय ।१६। तेजोदेवमयि ।१७। तेजोदेवमय ।१८। मनोजदेवमयि ।१९। मनोजदेवमय ।२०। कल्याण देवमयि ।२१। कल्याण देवमय ।२२। रत्न-देवमयि ।२३। रत्नदेवमय ।२४। वासुदेवमयी ।२५। वासुदेव-मय ।२६। श्री रामानंदमयि ।२७। श्री रामानंदमय ।२८। अणिमा सिद्धे ।२९। अणिमा सिद्ध ।३०। लघिमा सिद्धे ।३१। लधिमा सिद्ध ।३२। महिमा सिद्धे ।३३। महिमासिद्ध ।३४। इशित्वसिद्धे ।३५। इशित्व सिद्ध ।३६। वशित्व सिद्धे ।३७। वशित्वसिद्ध ।३८। प्राकाम्य सिद्धे ।३९। प्राकाम्य सिद्ध ।४०। भुक्ति सिद्धे ।४१। भुक्ति सिद्ध ।४२। इच्छा सिद्धे ।४३। इच्छा सिद्ध ।४४। प्राप्ति सिद्धे ।४५। प्राप्ति सिद्ध ।४६। सर्वकामसिद्धे ।४७। सर्वकाम सिद्ध ।४८। ब्राह्मि ।४९। ब्रह्मा ।५०। माहेश्वरि ।५१। माहेश्वर ।५२।

इति स्वाधिष्ठान् चक्र देवताः ॐ लोपामुद्रा मध्यादि श्रीमाहेश्वर्यांत् । दव्यधिकपंचाशत् आवरण देवता संहितं श्रीमत् अमृतेश्वरानंदनाथ श्रीमत् अमृतेश्वर्यम्बारूपं मिथुनं लिंगस्थाने स्वाधिष्ठान चक्रे ध्यायेत्

॥ तद्ध्यानं ॥

तव स्वाधिष्ठाने हुत वह मघिष्टायनिरतं ।
तमीडे संवर्तं जननि महतिं तांच समयां ।
यदालोके लोकान् दहति महति क्रोध कलिते ।
दयार्द्राते दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति ।२।

क्षितौषट पंचाशत् द्वयमधिक पंचाशदुदके ।
हुताशेद्वाषष्टिश्चत्त रधिक पंचाशदनिले ।
दिविद्विः षट्त्रिंश मनसि च चतुषष्टिरितिये ।
मयुखास्तेषामप्यु परितव पादांबुज युगं ।३।

॥ इतिलिंगस्थाने स्वाधिष्ठाने चक्रध्यानं ॥

अथ मणिपूर चक्रध्यानाधिष्ठित देवता

ॐ कौमारी ।१। कौमार ।२। वैष्णवि ।३। वैष्णव ।४। वाराहि ।५। वाराह ।६। माहेन्द्रि ।७। माहेन्द्र ।८। चामुंडी ।९। चामुंड ।१०। महालक्ष्मी ।११। महालक्ष्मिन् ।१२। सर्वं संक्षोभिणि ।१३। सर्वं संक्षोभिन् ।१४। सर्वं विद्राविणि ।१५। सर्वंविद्राविन् ।१६। सर्वाकर्षिणि ।१७। सर्वाकर्षिन् ।१८। सर्ववशंकरि ।१९। सर्ववशंकर ।२०। सर्वोन्मादिनि ।२१। सर्वोन्मादिन् ।२२। सर्वं महांकुशे ।२३। सर्वंमहांकुश

।२४। सर्वं खेचरि ।२५। सर्वं खेचर ।२६। सर्वं बीजे ।२७। सर्वं बीज ।२८। सर्वयोने ।२९। सर्वयोने ।३०। सर्वत्रिखण्डे ।३१। सर्वं त्रिखंड ।३२। त्रैलोक्य मोहन स्वामिनि ।३३। त्रैलोक्य मोहन स्वामिन् ।३४। प्रकट योगिनि ।३५। प्रकट योगिन् ।३६। कामाकर्षिणि ।३७। कामाकर्षण ।३८। बुध्याकर्षिणि ।३९। बुध्याकर्षण ।४०। अहंकारा कर्षणि ।४१। अहंकाराकर्षण ।४२। शद्बाकर्षिणि ।४३। शद्बा कर्षण ।४४। स्पर्शाकर्षिणि ।४५। स्पर्शाकर्षण ।४६। रूपा कर्षिणि ।४७। रूपा कर्षण ।४८। रसाकर्षणि ।४९। रसाकर्षण ।५०। गन्धा कर्षणि ।५१। गन्धाकर्षण ।५२। चित्ताकर्षणि। ५३। चित्ताकर्षण ।५४। धैर्या कर्षणि ।५५। धैर्या कर्षण ।५६। स्मृत्याकर्षणि ।५७। स्मृत्याकर्षण ।५८। नामा कर्षणि ।५९। नामा कर्षण ।६०। बीजा कर्षणि ।६१। बीजा कर्षण ।६२।

इति श्री कौमार्यादि श्री बीजा कर्षण्यंत द्वा षष्टचावरण देवता सहितं श्री सर्वतानंद नाथ श्री सपर्याबां मिथुनं नाभौ मणि पूर चक्रे आग्नेयेतध्याये

॥ तत्ध्यानं ॥

ॐ तडित्वं तं शक्त्यातिमिर परिपंथिस्फुरणया ।
स्फुरन्नाना रत्ना भरण परिणद्धें द्रं धनुषम् ।

तव श्याममेघं कमपि मणिपूरैक शरणं ।
निषेवेवर्षं तं हरमिहिर तत्वं त्रिभुवनं ।४।

॥ इतिध्यात्वा ॥

अथ अनाहत चक्रध्यानाधिष्ठित देवता ॥ अथत्माकर्षणी ॥

ॐ आत्मा कर्षिणि ।१। आत्माकर्षण ।२। अमृता कर्षिणि ।३। अमृता कर्षण ।४। शरीरा कर्षणि ।५। शरीरा कर्षण ।६। सर्वाशापरिपूरक चक्रस्वामिनि ।७। सर्वाशा परिपूरक चक्र-स्वामिन् ।८। गुप्त योगिनि ।९। गुप्त योगिन् ।१०। नंगकुसुमे ।११। नंगकुसुम ।१२। अनंगमेखले ।१३। अनंग-मेखल ।१४। अनंग मदने ।१५। अनंग मदन ।१६। अनंग मदनातुरे ।१७। अनंग मदनातुर ।१८। अनंग रेखे ।१९। अनंगरेख ।२०। अनंगवेगिनि ।२१। अनंगवेगिन् ।२२। अनंगा-कुशे ।२३। अनंगाकुश ।२४। अनंगमालिनि ।२५। अनंग-मालिन् ।२६। सर्व संक्षोभण चक्र स्वामिनि ।२७। सर्व संक्षोभण चक्र स्वामिन् ।२८। गुप्ततर योगिनि ।२९। गुप्त-तर योगिन् ।३०। सर्व संक्षोभिणि ।३१। सर्व संक्षोभण ।३२। सर्व विद्राविणि ।३३। सर्वविद्राविण ।३४। सर्वाकर्षिणि ।३५। सर्वाकर्षन् ।३६। सर्वा ह्लादिनि ।३७। सर्वाह्लादिन् ।३८।

सर्व संमोहिनि ।३९। सर्व संमोहिन् ।४०। सर्वस्तंभिनि ।४१। सर्वस्तभिन् ।४२। सर्वजृंभिणि ।४३। सर्वजृंभिन् ।४४। सर्ववशंकरी ।४५। सर्ववशंकर ।४६। सर्वरंजिनि ।४७। सर्व रंजन् ।४८। सर्वोन्मादिनि ।४९। सर्वोन्मादिन् ।५०। सर्वार्थ-साधिनि ।५१। सर्वार्थ साधिन् ।५२। सर्व संपत्तिपूरिणि ।५३। सर्वसम्पत्ति पुरण ।५४।

ॐ इति श्रीमदात्मा कर्षण्यादि सर्व सम्पत्तिपूरणांत चतुः पंचाशत् आवरण देवता सहितं श्री परम हंसेश्वरा नन्दनाथ श्री परमं हंसेश्वर्यंबारूपं मिथुनंहृदि वायव्ये अनाहृत चक्रे ध्यायेत् ।

॥ तस्यध्यानम् ॥

समुन्मीलत्संवित्कमल मकरंदैक रसिकं ।
भजेहं किमपि (महतां मानस चरं) ।

शिवतानाहृत पदम् ।

यदालापादष्टा दश गुणित विद्या परिणति ।
यदा दत्तो दोषाद्‌गेण मखिलमब्धः पय इव ।५।

अथ विशुद्ध चक्रध्यानाधिष्टित देवता विषदः । ॐ सर्व मन्त्रमयि ।१। सर्वमन्त्रमय ।२। सर्वद्वंद्वंक्षयकारि ।३।

सर्व द्वंद्वं क्षयंकर ।४। सर्व सौभाग्यदायक चक्र स्वामिनि ।५। सर्व सोभाग्यदायक चक्र स्वामिन् ।६। संप्रदाययोगिनि ।७। संप्रदाय योगिन् ।८। सर्व सिद्धिप्रदे ।९। सर्व सिद्धिप्रद ।१०। सर्व संपत्प्रदे ।११। सर्व संपत्प्रद ।१२। सर्वप्रियंकारी ।१३। सर्वप्रियंकर ।१४। सर्व मंगलकारिणि ।१५। सर्व मंगलकारिन् ।१६। सर्व कामप्रदे ।१७। सर्वकामप्रद ।१८। सर्व दुख विमोचिनि ।१९। सर्व दुख विमोचिन् ।२०। सर्व मृत्यु प्रशमनि ।२१। सर्व मृत्यु प्रशमनम् ।२२। सर्व विघ्न-निवारिणि ।२३। सर्व विघ्ननिवारिन् ।२४। सर्वांगसुन्दरि ।२५। सर्वांगसुन्दर ।२६। सर्व सोभाग्यदायिनि ।२७। सर्व-सोभाग्यदायिन् ।२८। सर्वार्थसाधक चक्र स्वामिनि ।२९। सर्वार्थ साधक चक्र स्वामिन् ।३०। कुलोतिर्ण योगिनि ।३१। कुलोत्तीर्ण योगिन् ।३२। सर्वज्ञे ।३३। सर्वज्ञ ।३४। सर्वशक्ते ।३५। सर्वशक्त ।३६। सर्वेश्वर्यप्रदे ।३७। सर्वेश्वर्यप्रद ।३८। सर्वज्ञानमयी ।३९। सर्वज्ञानमय ।४०। सर्वव्याधि विनाशिनि ।४१। सर्व व्याधिविनाशिन् ।४२। सर्वाधार स्वरूपे ।४३। सर्वाधार स्वरूप ।४४। सर्वपाप हरे ।४५। सर्वपाप हर ।४६। सर्वानन्दमयि ।४७। सर्वानन्दमय ।४८। सर्वरक्षा स्वरूपिणि ।४९। सर्वरक्षा स्वरूपन् ।५०। सर्वेस्पितप्रदे ।५१। सर्वेस्पित प्रद ।५२। सर्वरक्षाकर चक्र स्वामिनि ।५३। सर्वरक्षाकर

चक्र स्वामिन् ।५४। निगर्भयोगिनि ।५५। निगर्भयोगिन् ।५६। वशिनि ।५७। वशिन् ।५८। कामेश्वरी ।५९। कामेश्वर ।६०। मोदिनि ।६१। मोदिन् ।६२। विमले ।६३। विमल ।६४। अरुणे ।६५। अरुण ।६६। जयिनि ।६७। जयिन् ।६८। सर्वेश्वरि ।६९। सर्वेश्वर ।७०। कौलिनि ।७१। कौलिन् ।७२।

इति श्रीसर्वमन्त्रसख्यादि कौल्यांतद्वासत्पतिरुपा आवरण देवता सहितं श्री परशिवानंदनाथ श्री परांबा रुपं मिथुनं विशुद्ध चक्रे पद्मेध्यायेत् ।

॥ तत्ध्यानं ॥

ॐ विशुद्धौते शुद्ध स्फटिक विशदं व्योम जनकं ।
शिवेसेवे देवीमपि शिव समान व्यसनिनीं ।
ययोः कांत्या यांत्या शशि किरण सारुप्य सरापिं ।
विधूतांतध्वंति विलसति चकोरी वजगति ।६।

। इति विशुद्ध चक्र विशदं ।

। अथ मानस चक्रध्यानाधिष्टत देवताः विशदं ।

ॐ सर्व रोगहर चक्र स्वामिनि ।१। सर्व रोगहर चक्र

स्वामिन् ।२। रहस्य योगिनि ।३। रहस्य योगिन् ।४। बाणिनि ।५। बाणिन् ।६। चापिनि ।७। चापिन् ।८। पाशिनि ।९। पाशिन् ।१०। अंकुशिनि ।११। अंकुशिन् ।१२। महाकामेश्वरी ।१३। महाकामेश्वर ।१४। महावज्रेश्वरी ।१५। महावज्रेश्वर ।१६। महाभगमालिनि ।१७। महाभगमालिन् ।१८। महाश्रीसुन्दरि ।१९। महाश्रीसुन्दर ।२०। सर्वसिद्धिप्रद चक्र स्वामिनि ।२१। सर्व सिद्धि प्रद चक्र स्वामिन् ।२२। अति रहस्य योगिनि ।२३। अति रहस्य योगिन् ।२४। श्री श्रीमहाभट्टारिके ।२५। श्री श्रीमहाभट्टारक ।२६। सर्वानन्दमय चक्रस्वामिनि ।२७। सर्वानन्दमय चक्र स्वामिन् ।२८। परापर रहस्य योगिनि ।२९। परापर रहस्य योगिन् ।३०। त्रिपुरे ।३१। त्रिपुर ।३२। त्रिपुरेशि ।३३। त्रिपुरेश ।३४। त्रिपुर सुन्दरी ।३५। त्रिपुर सुन्दर ।३६। त्रिपुरवासिनि ।३७। त्रिपुरवासिन् ।३८। त्रिपुरा श्रीः ।३९। श्रीत्रिपुर ।४०। त्रिपुर मालिनि ।४१। त्रिपुर मालिन् ।४२। त्रिपुर सिद्धे ।४३। त्रिपुर सिद्ध ।४४। त्रिपुरांबा ।४५। त्रिपुरांब ।४६। महात्रिपुर सुन्दरि ।४७। महात्रिपुर सुन्दर ।४८। महामहेश्वरी ।४९। महा महेश्वर ।५०। महा महाराज्ञी ।५१। महा महाराजन् ।५२। महा महाशक्ते ।५३। महा महाशक्त ।५४। महा महगुप्ते ।५५। महा महागुप्त ।५६। महामहाज्ञप्ते ।५७।

महामहाज्ञप्त ।५८। महामहानंदे ।५९। महामहानंद ।६०। महामहास्पंदे ।६१। महामहास्पंद ।६२। महामहाशये ।६३। महा महाशयं ।६४।

ॐ इति श्री सर्व रोगहर चक्रस्वामीत्यादि महाशयांत चतुः षष्टिरूपावरण देवता सहितं श्री शंभुवानन्द नाथ श्री पराचिन्दबा रूपं मिथुनं मानसे आज्ञा चक्रे ध्यायेत् ।

॥ ध्यान ॥

तवाज्ञाचक्रस्थं तपन शशि कोटिद्युति धरं।
परं शंभु वंदे परिमिलित पार्श्वंपर चिता ।
यमाराध्यं शक्त्या रविशशि शुचिनाम विषये ।
निरालोके लोको निवसति हि भालोक भवने ।७।

। इति षट्चक्र विषदं सपूंर्ण ।

अनेन श्री महाम्हा श्रीचक्रनगर साम्राज्ञी देवी महा महां तर्यंजनेन सैव देवताः प्रीयंतां नमम । ॐ तत्सत् श्रीगुरुनाथ श्रीनर्मदार्पणमस्तु ।

ॐ तत्सत ॥ ॐ शांति ॥३॥

प्रार्थना श्लोक:

ॐ मनस्तं व्योमस्तं मरुदसि मरुत्सारथि रसि ।
त्वमापस्त्वं भूमि स्त्वंभि परिणतायां नहि परं ।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितु विश्ववपुषा ।
चिदानन्द कारं शिव युवति भावेन बिभृते ।८।

इति श्रीमदगस्ति दुर्वासा प्रभृतिभि भीवनयानुष्ठितं श्री कामेश्वरि कामेश्वरोभयोरंतर्यंजननात्मकं षडास्नाय रहस्य स्तवं श्री मच्छंकराचार्यैं श्री सौन्दर्यलहर्या प्रकटीकृत-मिति ।

॥ इति श्रीचक्र भावना ॥

श्री शक्ति पीठानि

श्री मेरु तन्त्रोक्तानि सती देव्यङ्ग पतितानि मातृका पीठानि ।

ॐ नमो भगवत्यै श्रीचन्द्रशेखर मूर्तये ।
सच्चिदानन्द रूपिण्यै स्वात्मप्रबोधप्रपूर्तये ।
अथ गुह्यतमं वक्ष्ये रहस्य पीठ संभवम् ।
यज्ज्ञात्वा साधकास्सर्वे सिद्धिं यान्ति च नान्यथा ।
पीठानि चैक पंचाशत्पंचाम्नायस्थ देवताः ।
तत्र तिष्ठन्ति भो देवास्त्रय स्त्रिशन्मितानि च ।
उपपीठानि यत्प्रोक्ताः षष्ठाम्नाय तु देवताः ।
तत्तेषां तु समुद्दिष्टं तत्राथ हृदयोद्धनः ।
तेऽङ्गपति यत्र जातः तत्र तिष्ठन्ति वैदिकाः ।
तथा दक्षिणमार्गश्च सिद्धयेऽन्यत्र वामकः ।

अकारः कामाख्यापीठम् ।

अकारः कामरूपाख्यमादिपीठं तदुच्यते ।

यस्मिन्पीठे मया देवि कुलमार्गः प्रवर्तितः ।
तत्र ते पातिता योनिः तां द्रष्ट्वा तत्प्रियं कृतम् ।
कुलशास्त्रं तु कौलानां ज्ञानिनां मुक्तिदायकम् ।
पंचमानां द्रुतं सिद्धिः अन्येषां नैव जायते ।
तद्द्रष्टुं ह्यणिमादीनां सिद्धिकामैश्च गम्यताम् ।
श्री विद्यायास्तु तन्मुलं मासि मासि क्षरेद्रजः ।
कुल सिद्धस्य लोपेतु रजस्तंभः प्रजायते ।
अस्योपपीठ द्वितयं समन्तातव सूचनात् ।
वशाख्यं लोमतो जातं सिद्धि शावरचेरकी ।

आकारः काशी

आकारः काशिकापीठस्त्वद्दत्तो भेदतां गतः ।
प्रलयेपि न नाशोस्य यत्प्रोक्तस्सं महेश्वरः ।
न पापं यत्र पुण्यं न देहत्यागात्परं पदम् ।
द्वयमेव फलं तत्र मुक्तिस्तक्योप पीठके ।
यातना भैरवी या या तत्र पीठे पदे पदे ।
मया न शक्यते पातुं तत्र ते स्तनकुंभतः ।
निस्सृतं धारयोर्युग्मं सासिश्च वरुणाभवत् ।
काश्यां बहिर्योजनैकं देव भूमिरितिस्मृता ।
तत्र चाराधिना मन्त्राः तत्काले फलदायकाः ।

यथास्थानं चतुर्दिक्षु तत्रद्याम्नायदेवताः ।
तिष्ठन्ति देवस्तत्सिद्धिः पुरश्चरण मात्रतः ।
गङ्गायाः परपारीणः काशी भागः पवित्रितः ।
व्यासशापेन तज्नानं गर्दभक्षेत्रमुत्तमम् ।
तत्कालं तत्र संसिद्धिः तत्राम्नायस्य जायते ।
उपपीठमसेस्तीरे सारनाथस्तु दक्षिणे ।
तत्र दक्षिणमार्गस्य मन्त्रास्सिद्धिप्रदायकाः ।
वरुणायास्सौम्य भागे सारनाथस्तथोत्तरः ।
तच्चोपपीठं वामस्य मार्गस्यातीव सिद्धिकृत ।

इकारः नेपाळम्

नेपाळं तु इकारस्स्यात गुह्यं तत्र तु पार्वति ।
तस्याद्वामस्य मार्गस्य मूलं स्थानं तदुच्चते ।
षट्पंचाशल्ल क्षमिताः भैरव्यो भैरवास्तथा ।
शक्तीनांच सहस्रे द्वे पीठानां च शतत्रयं ।
चतुर्दशश्मशानानि तत्र सन्निदितानि च ।
दक्षमार्गे सिद्धिदानि पीठान्यष्टौ च तत्र तु ।
सिद्धि वैदिक मन्त्राणां तत्र पीठ चतुष्टये ।
तन्मलं यत्र पतितं जातं तदुपपीठकम् ।
नेपालात्पूर्व देशे तत्किरातैरूपवेष्टितम् ।

त्रिशत्तत्रसहस्राणि देवयोनिनि सन्तिहि ।

ईकारः रौद्रपर्वतम्

ईकारस्य समुत्पत्तिस्थानंस्याद्रौद्र पर्वतम् ।
पतितं वामनेत्रं ते महत्पीठं तदुच्यते ।
यस्यकस्यापि मन्त्रस्य जपात्सिद्धिः प्रजायते ।
वामाचारात्तत्र देव देवता दर्शनं भवेत् ।

उकारः काश्मीरम्

उकारस्य समुत्पत्तिस्थानं काश्मीरमीरितम् ।
कर्णो निपतितो वामस्तस्मात्पीठोत्तमं मतम् ।
यस्य कस्यापि मन्त्रस्य तं तं मन्त्रं जपेन्नरः ।
विद्यानां पारदर्शी स्यात्तत्व ज्ञानी भवेत्तथा ।
वैदिकाद्वा कौलिकाद्वा स्मार्ताद्वा दक्षमार्गतः ।
च्युतानां तत्र देवेशि प्रायश्चित्तकराणि च ।
मयाकृतानि तीर्थाणि सद्यः प्रत्ययदानि च ।
करिष्याति गुप्तानि कलौम्लेच्छावृतानि च ।

ऊकारः ॥ कान्यकुब्जम्

ऊकारस्य समुत्पत्तिस्थानं स्यात्कान्यकुब्जकम् ।

तत्र ते दक्षकर्णस्तु पतितोऽतीवशोभनः ।
गंगायमुनयोर्मध्ये तदन्तर्वेदि संज्ञकम् ।
तत्क्षेत्रं सोमपानादि निवासायोपकल्पितम् ।
तत्र ब्रह्मादयो देवाः स्व स्वतीर्थानि चक्रीरे ।
तत्र वैदिक मन्त्राणां सिद्धिः देवाः पदे पदे ।
तत्र देवि मलाज्जातं यमुनातटयास्थितम् ।
इन्द्रप्रस्थं नाम लोके प्रसिद्धिमुमपीठकम् ।
ब्रह्मणा विस्मृता वेदा यत्पीठस्य प्रभावतः ।
पुनर्लब्धास्ततो जातं तीर्थं निगमबोधकम् ।
तत्रकाळी तपस्तेपे तोषयिष्यन्ति ये च माम् ।
पंचमैस्तदयुक्तावा तद्भूवेद्भद्वरेच्छया ।
सा तु तत्र वरं प्राप्य महाकालाज्जगत्तदा ।
पंचमे प्रेरयामास सिद्धि च प्रकटां ददौ ।

ॠकारः ॥ पूर्णगिरिः

ॠकारो भूत्पूर्णगिरौ पतिता तत्र नासिका ।
अतो योगस्य संसिद्धिः तत्र पूर्णा प्रजायते ।
तत्र प्रत्यक्षतां यान्ति मन्त्राधिष्ठान देवताः ।

ॠकारः ॥ अर्बुदाचलम्

ॠकारस्य समुत्पत्ति स्थानं स्यादर्बुदाचलम् ।
वासस्ततो निपतितस्त्वत एव च वल्लभः ।
शक्ति स्तस्यांबिका नाम स्वस्वाचारप्रिया सदा ।
पुरश्चर्या यदेकापि भोगकाले प्रजायते ।
तस्मिन्पीठे भवेन्मुक्तिः सहस्रभगसङ्गमात् ।
दिव्यस्त्रीणां तु तत्स्थानं देवतारस्य पार्वति ।
प्रतिज्ञा महती जाता तया देव्या मया सह ।
निर्वाह्येन्मम क्षेत्रे ब्रह्मचर्यं तु यः पुमान् ।
द्वादशाब्दं तु मत्थर्ता स एवैको भविष्यति ।
बौद्धोपि स्खलितस्तत्र त्रिदिनोनैकवत्सरे ।
निर्वाहस्तत्र वामस्य दक्षे विन्धाभवन्तिहि ।

ऌकारः ।। आम्रातकेश्वरम्

ऌकारस्य समुत्पतिः यत्रचाम्रातकेश्वरः ।
दक्षो गण्डो निपति तस्मत्पीठे महदद्भुतम् ।
धनदाद्यास्तत्र यक्षा यक्षिण्यो धनदादिकाः ।
वसन्ति तत्र जपतस्तेषां सिद्धिः प्रजायते ।

ॡकारः ।। एकाम्रम्

ॡकारस्य समुत्पत्तिरेकाम्रे तु पुराभवत् ।

नखास्ते गळितास्तत्र तप्तं विद्याधरैर्बंदु ।
विद्यार्थिना तु तत्पीठंभिष्ट विद्याप्रदायकम् ।
अश्रुतो बुध्यते ग्रन्थः तत्र सारस्वताज्जपात् ।

एकारः ।। त्रिस्त्रोतः

एकारजन्म त्रिस्त्रोतः पतिताः त्रिवली तव ।
त्रिवाते वसनं जातं प्राक पश्चाद्दक्षिणेपतत् ।
त्रीणि तान्युपपीठानि गृहस्थस्तत्र सिध्यति ।
द्विजश्चनेतरो वर्णः मानवः पौष्टिके स्थितः ।

ऐंकारः ।। कामकोटि

ऐंकारो भुत्कामकोटे नाभिस्तत्र तु ऽपतत् ।
तत्र सर्वेपि सिद्धयन्ति काममन्त्रा न संशयः ।
कामिनीं त्वां समोराध्य छाछिकातीरसङ्गताम् ।
षोडशस्त्री सहस्राणां भोगे सामर्थ्यवान्भवेत् ।
चतुर्दिक्षूपपीठानि तत्र जातानि पार्वति ।
स्थानमप्सरसां तत्र ये मन्त्राः स्त्री प्रसङ्गिकाः ।
सर्वे ते तत्र सिध्यन्ति क्षिप्रमेव न संशयः ।
दर्शनेनापि लभते सिद्धिमिष्टां मनोरमाम् ।

ओंकारः ।। कैलासः

ओकारो भूच्च कैलासे हिमाचल नगोदरे ।
अङ्गुल्यः पतितास्तत्रः पर्वभिः लिङ्गतांगताः ।
करमालिकया तत्र यं यं मन्त्रं जपेद्विजः ।
पुरश्चरणमात्रेण तुष्टा भवति देवता ।

औकारः ॥ भृगुपीठः

औकारस्य समुत्पत्तिः भृगुपीठेऽभवत्पुरा ।
तत्र ते पतिताः दन्ताः तत्पीठं महदद्भुतम् ।
समस्ता वैदिका मन्त्राः कल्पोक्ताश्चस्वरूपतः ।
तत्र तिष्ठन्ति सेवातः सद्यस्सिद्धा भवन्तिहि ।

अंकारः ॥ केदारः

अंतु केदार संभूतं दक्षं करतलं तव ।
पतितं तत्र पीठेतु सिद्धयः करसंस्थिताः ।
तस्य दक्षे चोप पीठ मगस्त्याश्रम संज्ञिताम् ।
कङ्कण पतितं तत्र सर्व सिद्धि विधायकम् ।
तत्पश्चान्मुद्रिकायास्ते जातं पीठं तदुत्तमम् ।
इन्द्रक्षी नाम यत्तत्रसेन्द्रेणोपासिता पुरा ।
तत्पश्चाद्रेवती तीरे पतिता वलयास्तव ।
पतितोपि विमुच्येत राजराजेश्वरीति चः ।

वामाचारेण तत्रापि सिद्धिस्तूर्णं प्रजायते ।
जपादेवतु यक्षिण्यः तत्रस्युः दृष्टिगोचराः ।

अः कार ॥ चन्द्रपुरम्

अः कारो भूच्चन्द्रपुरे पतितो वामगण्डकः
तत्र सर्वेपि मनवः सिध्यन्त्येव न संशयः ।

ककारः ॥ श्री पीठम्

श्री पीठेतु ककारो भून्मस्तकं पतितं तव ।
प्रायस्तत्र सपापानां गमनं दुर्लभं कलौ ।
समस्ताश्शक्तयो यत्र रमन्ते निशिचेच्छया ।
अप्रमत्तं न बाधन्ते विधमं भक्षयन्ति च ।
कर्णा भरणतो जातमुपपीठं तु पूर्वतः ।
ब्राह्मी तत्र स्थिता शक्तिः ब्रह्मविद्याप्रकाशिका ।
कर्णार्द्धा भरणाद्वह्नि कोणे भूदुपपीठकम् ।
माहेश्वरी तत्र शक्तिः मुखशुद्धि करामता ।
पत्रावल्यस्तु तद्दक्षे पतितास्ते तदाभवत् ।
उपपीठं तत्र शक्तिः कौमारी जयकारिणी ।
कण्ठ साला तु नैऋत्यां पतिता चोपपीठकम् ।
वैष्णव्यावस्थितं जातं इन्द्रजाले सुसिद्धिदम् ।

नासामुक्ता तु तत्पश्चात्पतिता चोपपीठकम् ।
वाराह्यधिष्ठितं जातं शत्रुमर्दनकारकम् ।
मस्तकाभरणं वायौ पतितं चोपपीठकम् ।
चामुण्डाधिष्ठितं जातं क्षुद्रदैवत सिद्धिदम् ।
केशाभरण तस्ते भूदेशान्यामुपपीठकम् ।
अधिष्ठितं महालक्ष्म्या सूक्तानां तत्रसिद्धये ।

खकारः ॥ ओङ्कारपीठम्

खकारो भूत्तदोङ्कारे क्षेत्रं चामरकण्टके ।
त्वट्वाद्‌ पतनात्पीठो नर्मदा धिष्ठितो भवत् ।
तत्र सर्वे मुनिवरैः प्रणतैस्समुपासकैः ।
कृतंमहत्तपो जाता जीवन्मुक्ता मदर्षयः
तदुत्तरे चोपपीठं कंचुकीपतनाद भूत् ।
ज्योतिष्यत्या निवासोसौ ज्योतिर्मन्त्र प्रकाशतः ।

गकारः ॥ ज्वालामुखी

वक्षो निपतितं यत्र जातं पीठं महाद्भुतम् ।
विख्यातो ज्वालया तत्र वह्निनां च तपः कृतम् ।
सदेवमुखतां प्राप्तः स्थितस्तस्योपपीठके ।
ज्वालामुखीति विख्यातं स वह्निर्देवतामुखम् ।

पुरश्चर्योक्तद्रव्यस्य पुरश्चरण संख्यया ।
तत्र होमः प्रकर्तव्यो मन्त्र सिद्धिर्न संशयः ।
गोरक्षकेण तत्रैव प्राप्तं सिध्यष्टकं पुरा ।
दर्शनादेव तन्नृणां सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।

घकारः ।। मालवम्

मालवं तु घकारस्य वामस्कन्धोत्र संस्थितः ।
उपासितं तु गन्धर्वैः राग ज्ञानक संस्थितम् ।

ड.कारः ।। कुलान्तकम्

कुलान्तके ड.कारो भूत् कक्षो निपतितस्व ।
दोषोच्चाटन मृत्युनां प्रयोगास्तत्र सिद्धिदाः ।

चकारः ।। कोट्टकम्

कोट्टके चकारो भूतवाम कक्षः प्रतिष्ठितः ।
लब्धा तु राक्षसैस्तत्र सिद्धिर्देव जयाभिधा ।

छकारः ।। गोकर्णम्

छकारस्य समुत्पत्तिः गोकर्णे परिकीर्तिता ।
जठरं पतितं यत्र तच्चपीठ महाद्भुतम् ।

जकारः ॥ मारुतेश्वरम्

मारूतेश्वर संज्ञो यो जकारस्तत्र ते बलिः ।
प्रथमा पतिता पीठं शिवमन्त्र प्रकाशकम् ।

झकारः ॥ अट्टहासम्

अट्टहासं झकारस्य स्थानं तत्रापराबलिः ।
पतिता तद्गणेशस्य मन्त्र सिद्धिकरं परम् ।

ञकारः ॥ विरजः

विरजस्तु ञकारस्यस्थानं तत्र पराबलिः ।
समस्त विष्णु मन्त्राणां तत्र सिद्धिरदूरतः ।

टकारः ॥ राजगृहम्

टस्योत्पत्ति राजगृहे बस्तिपातस्तु तत्र ते ।
तदधस्तात् क्षुद्रघण्डा पतिता चोपपीठकम् ।

ठकारः ॥ महापथम्

महापथे ठकारो भूत नितंबः पतितस्तव ।
जातिदुष्टैः द्विजैस्तत्र स्वशरीरं समर्पितम् ।
प्राप्य जन्मान्तरं तैस्तु वेदमार्ग प्रलुंबकाः ।
अघोराद्याः कलौ मार्गाः चालिताः देहसौख्यदाः ।

डकारः ।। कोल्लगिरिः

डकारो भूत कोल्लगिरौ जघनं पतितं तव।
समस्त वन देवानां तत्र सिद्धिरदूरतः।

ढकारः ।। एलापुरम्

एलापुरे ढकारो भूत् दक्षोरु पतितस्तव ।

णकारः ।। कालेश्वर

कालेश्वरो णकारो भूत् वामोरु पतितस्तव।
मृत्युंजायायुष्यकरणस्सिध्यन्ति तत्र तु

तकारः ।। जयन्ती

जयन्ती तु तकारस्य स्थानं जानु निपातितम्।
तत्र दक्षो जपात् सिध्येत् धनुर्वेदो न संशयः।

थकारः ।। उज्जयिनी

उज्जयिन्या थकारो भूत् वामं जानु तु तत्र तु।
सिध्यै कवचमन्त्राणां अवन्तीति निगद्यते।

दकारः ।। योगिनी

दस्योत्पत्तिस्तु योगिन्यां तत्र जंघानिपातिता ।
कौलिका वामका मन्त्राः तत्र सिध्यन्ति नेतरे ।

धकारः ॥ क्षीरिका

धकारो भूत क्षीरिकायां वाम जघा तु तत्र ते ।
तत्र वैताळिका मन्त्राः सिद्धि यान्ति च शाबराः ।

नकारः ॥ हस्तिनापुरम्

हस्तिनापुर उत्पत्तिः न कारस्य प्रकीर्त्यते ।
दक्षस्ते पतितौ गुल्फः नूपुरश्चैव तत्र हि ।
उप पीठन्तु यज्जातं तत्ख्यातं नूपुरार्णवम् ।
पीठोपपीठयोस्तत्र मन्त्रास्सिध्यन्ति भाष्कराः ।

पकारः ॥ उड्डीशम्

उड्डीशाख्यं पकारस्य पीठस्तत्र तु वामकः ।
गुल्फो निपतितस्तत्र कृतसाधक सिद्धिदम् ।
उड्डीशाख्यं महातन्त्रं सिद्धं भवति तत्र तु ।
नूपुरः पतितो यत्र डामरं चोपपीठकम् ।

फकारः ॥ प्रयागः

प्रयागस्तु फकारस्य स्थानं देहरसोत्र तु ।

यत्रैव पतितस्तत्र दृश्यते श्वेतमृत्तिका ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये पारावारे तथैव च ।
एवं स्थानेषु तेऽस्थीनि पतितानि द्विजोत्तमैः ।
कृतानि तानि भूम्यन्तः तत्र पीठानि जज्ञिरे ।
गङ्गायाः प्राक च बगळाद्युपपीठं महाद्भुतम् ।
उत्तरेस्यास्तु चामुण्डाद्युपपीठं महाद्भुतम् ।
यमुना दक्षिणाकूले भुवनेशी समाश्रिता ।
प्रयागोतस्तीर्थराजः पीठराजश्च कथ्यते ।

बकारः ।। षष्टीशः

षष्टीशस्तु बकारस्य स्थानं पृष्णिस्तु तत्र ते ।
दक्षिणः पतितो देवि पादुका सिद्धिरत्र तु ।

भकारः ।। मायापुरम

मायापुरे वामपार्ष्णिः पतितो भस्थलं तु तत् ।
देव दानव गन्धर्वं मायास्सिध्यन्ति तत्र तु ।

मकारः ।। मलयम्

मलयाख्यो मकारो भूत् पीठोऽसृक् तत्र तेपतत् ।
रक्तांबरादिबौद्धानां मन्त्रसिद्धिस्थलं तु तत् ।

यकारः ।। श्रीं शैल

श्री शैलस्तु यकारो भूत्तत्र पित्तं तवांबिके ।
सर्वे मन्त्रास्तत्र सिद्धाः वैष्णवास्तु विशेषतः ।

रकारः ।। मेरुश्रृङ्गम्

रस्थानन्तु दिमागस्य मेरूर्नामिक श्रृङ्गकम् ।
त्वन्मेदः पतितं सिद्धिः स्वर्णाकर्षण भैरवः ।

लकारः ।। गिरिपीठम्

लकारस्य समुत्पत्तिः गिरिपीठे तु तत्र ते ।
जिव्हाग्रं पतितं तत्र जपात् वाक् सिध्यति ध्रुवम् ।

वकारः ।। माहेन्द्रम्

माहेन्द्रन्तु वकारस्य स्थानं मज्जोपतत्तव ।
सर्वेषां शक्ति मन्त्राणां सिद्धिस्तत्र न संशयः ।

शकारः ।। वामनम्

वामनंतु शकारस्य स्थानमङ्गुष्ठतो भवेत् ।
जपात्तत्र तु मुख्यत्वं मन्त्रिषु प्राप्नुयादपि ।

षकारः ।। हिरण्यपुरम्

हिरण्यपुर संभूतः षकारो वामतो भवत् ।
अंगुष्ठादेव तत्पीठो वाममार्गेधिको भवत् ।

सकारः ।। महालक्ष्मी पीठम्

पीठे चापिमहालक्ष्म्याः सकारोभूद्रुचिस्तव ।
शरीरात्पतिता तत्र सर्वं सिद्धिः प्रजायते ।

हकारः ।। अत्रिस्थानम्

हकारश्चत्रिस्थाने भूद्धमनी तत्र तेपतत् ।
दृग्गोचरास्तु यावन्त्यः सिद्धयस्तत्र संस्थिताः ।

ळकारः ।। छायापीठम्

छायापीठे ळकारो भूद्दृष्टा छाया मया तव ।
सतीवेषं तु लब्ध्वाभूत छाया पीठमतस्तु तत् ।

क्षकारः ।। छत्रपीठम्

छत्र पीठे समुत्पन्नः क्षकारः केशपाशकः ।
यत्र ते पतितो देवि तत्र सिद्धिरदूरतः ।

एतद्देवि मया प्रोक्तं रहस्यं पीठ संभवम् इति श्री मेरूतन्त्रे दशम पटले श्लोकं ८०१ - ९१६ पीठ रहस्यं संपूर्णम् ।

शिवम्

१	अं	कामरूप	योनिः
२	आं	वाराणसी	स्तनौ
३	इं	नेपालम्	मूलाधारम् गुदम्
४	ईं	रौद्रपर्वतम्	वामनेत्रं
५	उं	काश्मीरं	वामकर्णः
६	ऊं	कान्यकुब्ज	दक्षकर्णः
७	ऋं	पूर्णगिरिः	नासिका
८	ॠं	अर्बुदाचलम्	वासः
९	ऌं	आम्रतकेश्वरम्	दक्षगण्डः
१०	ॡं	एकाम्रम्	नखाः
११	एं	त्रिस्रोतः	त्रिवली
१२	ऐं	कामकोटिः	नाभिः
१३	ओं	कैलासम्	अङ्गुल्यः
१४	औं	भृगुपीठम्	दन्ताः
१५	अं	केदारम्	दक्षकरतल

१६	अः	चन्द्रपुरम	वामगण्डः
१७	कं	श्रीपीठम्	मस्तकम्
१८	खं	ओङ्कारम्	बाहू
१९	गं	ज्वालामुखी	वक्षः
२०	घं	मालवम्	वामस्कन्ध
२१	ङ.	कुलान्तकं	दक्षकक्षः
२२	चं	कोट्टकम्	वामकक्षः
२३	छं	गोकर्णम्	जठरम्
२४	जं	मारुतेश्वरं	बलिः
२५	झं	अट्टहासम्	अपराबलिः
२६	ञं	विरजः	इतराबलिः
२७	टं	राजगृहं	बस्तिः
२८	ठं	महापथम्	नितंबम्
२९	डं	कोल्हगिरि	जंघम्
३०	ढं	एलापुरं	दक्षोरु
३१	णं	कालेश्वरं	वामोरु
३२	तं	जयन्ती	दक्ष जानुः
३३	थं	उज्जयनी	वाम जानुः
३४	दं	योगिनी	दक्ष जंघा
३५	धं	क्षीरिका	वाम जंघा

३६	नं	हस्तिना पुरम	दक्षगुल्फ
३७	पं	उड्डीशम्	वामगुल्फ
३८	फं	प्रयागम्	देहरस
३९	बं	षष्टीशम्	दक्षपार्ष्णि
४०	भं	मायापुरं	वामपार्ष्णि
४१	मं	मलयम्	असृक्
४२	यं	श्रीशैलम्	पित्तम्
४३	रं	मेरूः	मेदः
४४	लं	गिरिपीठम्	जिह्वाग्रम्
४५	वं	माहेन्द्रम्	मज्जा
		मातृका पीठानि	पतितानि अंगानि
४६	शं	वायनम्	दक्षांगुष्ठम्
४७	षं	हिरण्यपुरम्	वामांगुष्ठम्
४८	सं	महालक्ष्मीपीठम्	रुचिः
४९	हं	अत्रिस्थानम्	धमनी
५०	ळं	छायापीठम्	छाया
५१	क्षं	छत्रपीठम्	केशपाशः

इति मेरूतन्त्रोक्तानि पीठस्थानानि शिवम्

अथ श्री बगला मुखी प्रयोगः

श्री गणेशाय नमः । ॐ अस्य श्री ब्रह्मास्त्रविद्या बगलामुखी महामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः । गायत्री छन्दः । श्रीपीतांबरा देवता । ॐबीजं । ह्लीं शक्तिः । स्वाहा कीलकं । मम श्री बगलामुखी प्रसाद सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

अथ न्यासाः –

ॐ ह्लीं अंगुष्ठाभ्यां नमः ।
बगलामुखी तर्जनीभ्यां नमः ।
सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तंभय मध्यमाभ्यां नमः ।
जिह्वां कीलय अनामिकाभ्यां नमः ।
बुद्धि विनाशय कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ह्लीं ॐ स्वाहा करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः ।

अथ हृदयादि न्यास –

ॐ ह्लीं हृदयाय नमः ।
बगलामुखी शिरसे स्वाहा ।
सर्व दुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तंभय शिखायै वषट् ।
जिह्वां कीलय कवचाय हुं ।

बुद्धि विनाशय नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ह्लीं ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

॥ इति दिग्बन्धः ॥

॥ अथ ध्यानं ॥

जिह्वाग्रमादाय करेण देवी वामेन शत्रून् परिपीडयन्ती ।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीतांबराढ्यां द्वि भुजां नमामि ।
जिह्वा मुद्रां प्रदर्श्यं ।

ॐ ऐं ह्लीं श्रीं बगलामुखी देवतायै नमः ।
जिह्वामुद्रां प्रदर्शयामि नमः ।

ॐ ऐं ह्लीं श्रीं बगलामुखी देवतायै नमः ।
गदा मुद्रां प्रदर्शयामि नमः ।

ॐ ऐं ह्लीं श्रीं बगलामुखी देवतायै नमः ।
किरीट मुद्रां प्रदर्शयामि नमः ।

ॐ ऐं ह्लीं श्रीं बगलामुखी देवतायै नमः ।
कुंडल मुद्रां प्रदर्शयामि नमः ।

मानसोपचारैः संपूज्य ॥

सर्वं ब्रह्म हृदयं चिंत्य । अथ मूल मंत्रं जपेत् ।

अथ मन्त्र–

ॐ ह्लीं बगलामुखी सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तंभय जिह्वां कीलय बुद्धि विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा ।

॥ अथ मालामन्त्रं ॥

ॐ ह्लीं नमो भगवति बगलामुखि चामुंडे वन काकगृध्रोलूक परिवारे श्मशान प्रिये नररुधिरमांसप्रिय भोजने सिद्धविद्याधरवृन्द वंदितचरणे ब्रह्मेश शरभ कुवेर भैरवयुते रुद्रकोटि विनिर्गत शरीरे । द्वादशादित्य चामुण्डास्वरूपे । अस्थि कंठ कपाल मध्ये प्रविश्य शीघ्रं दक्षिण दिशां आनृत्य नय-नय नुद-नुद चट-चट अमुकं (मम सन्निहितानां दूरस्थानां सर्वदुष्टानां सर्वं विरोधीनां) वाचं मुखं पदं स्तंभय-स्तंभय जिह्वां किलय-किलय बुद्धि विनाशय-विनाशय मारय-मारय की चूर्णय-चूर्णय आवेशय-आवेशय स्फोटय-स्फोटय त्रोटय-त्रोटय महाभूतान् भंजय-भंजय ब्रह्मराक्षसान् उच्चाटयोच्चाटय ।

भूत प्रेत पिशाचान्ब्रह्मराक्षसानुच्चाटयोच्चाटय सत्यं कथय-कथय वृक्षेभ्यः संत्रासय-संत्रासय नदीं चालय-चालय

आकर्षय-आकर्षय स्तंभय-स्तंभय गरुडपक्षपातेन विषं निर्विषं कुरु-कुरु लीलागारान् वृक्षेभ्यः परिपातय-परिपातय शैलकान् महीं मर्दय-महींमर्दय दुःखं पाटय-पाटय नदीं परिवर्तय-परिवर्तय पात्रंपूरय-पूरय भूत भविष्यादि यद्यास्तत्सर्वं कथय-कथय हन-हन दह-दह पच-पच मथ-मथ घर्घर-घर्घर ग्रासय-ग्रासय विद्रावय-विद्रावय उच्चाटय-उच्चाटय विष्णुचक्रेण वरुण पाशेन इन्द्रवज्रेण शिवशूलेन यमदंडेन ज्वरं नाशय-नाशय विषं स्फोटय-स्फोटय परमन्त्र परयन्त्र परतंत्रान् भंजय-भंजय सिद्धि प्रयच्छ-प्रयच्छ सर्वशत्रून् मम वशं कुरु कुरु। पाताल प्रविष्टांतरिक्ष आकाशग्रहान्मे वश-मानय-वशमानय कराल विकराल महाकाल रुद्रशक्ति पूर्वं दिशं विध्वंसय-विध्वंसय पश्चिमदिशं स्तंभय-स्तंभय दक्षिण दिशं निधय-निधय उत्तरदिशं बंधय-बंधय ज्वालामालिनी जृंभिणी स्तंभिनी मोहिनी मुकुट विचित्र कुंडलिनी नागादि वासुकि कृतहार भूषणी मेरून्नत शरीरे चन्द्रार्कभाप्रभंजने विधूत सुपूरित संकाय अट्टाट्टहासामृते फट् ह्लीं ह्लींकार विजृं-भितशरीरे सप्तद्वीपाकृते ब्रह्मांड विस्तारितस्तन युगले असित

मूशल परिघ तोमर क्षूरपाश हलेशु सहस्रबाहु परंपरादि विष्णुशक्ति सकलहृदयेश्वरि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तंभय-स्तंभय जिह्वां किलय-किलय बुद्धि विनाशय-विनाशय ह्लीं ॐ हुं फट् स्वाहा ॥इति माला मन्त्रः ॥

इस माला मन्त्र की ३६ आवृत्ति प्रतिदिन जप करना और ३६ दिन करने से कार्य सिद्धि होती है।

श्रीरस्तु

१०८ मूल मन्त्र जप– उत्तर न्यास– मानसोपचार–समर्पण
श्री बगला देवी अर्पणमस्तु

श्री दुर्गाद्वात्रिंशन्नाम

दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गापद्विनिवारिणी,
दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी ॥१॥

दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा,
दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोक दावानला ॥२॥

दुर्गमा दुर्ग मालोका दुर्गगत्स्वरूपिणी,
दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता ॥३॥

दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यान भासिनी,
दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी ॥४॥

दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुध धारिणी,
दुर्गमार्गा दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी ॥५॥

दुर्ग भीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी,
नामाऽऽवलिमिमांयस्तु दुर्गायामगमानवः ॥६॥

पठेत सर्वभयान्मुक्तो भविष्यति न संशयः,
शत्रुभिः पीडचमानो वा दुर्गबन्धगतोऽपिवा ॥७॥

द्वात्रिंशन्नाम पाठेन मुच्यते नात्र संशयः

श्री बाला स्तोत्रम्

बाले त्वं बलगर्विता सुरततेः कोलानना-
तालीपत्र सुकुण्डला करं सरोजातेन संलालिता ।
बालादित्य समानकान्तिरुचिरा लीलारतं ते शिशुं-
नीलाम्भोज समाननेत्र युगलात् संलोकयेत्यर्थये ।१।
बाले त्वं बलिदैत्यगर्वहरणे दक्षस्य विष्णोः प्रिया-
कीलालोद्भव जातदारमनसेरुत्साहदात्री परम् ।
बालं मां बलहीनमंध्रिजलजोद् भूतामृताप्लावितं-
मालाशोतिकन्धरे कुरु सदेत्यभ्यर्थये त्वां शिवे ।२।
बाले बालशशांकशोभिमुकुटे भीतार्तिभीनाशके
मालाऽभीतिवरादि पुस्तककरे संसाररुक्पीडितम् ।
बालं मां प्रविलोकयाशु करुणापूर्णेन ते चक्षुषा
मूलांभोजगणाधिपेष्ट वरदेत्यभ्यर्थये त्वां सदा ।३।
बाले त्वं बलरामसोदरनुते बालाजनप्रीतिदे
भूलोक स्थित सज्जनेष्ट वरद श्रीवेङ्कटाद्रिस्थिता ।
बालक्रीडनतत्परस्य मम हृत्पद्मेसदालीलया
खेलंती चितिरूपिणी भव शिवेत्यभ्यर्थये त्वां परे ।४।

बाले त्वं बलिदेवतानुतपदांभोजे बालाढ्ये वरे
बाद्यैर्लान्तषडक्षरैः विलसिते चक्रे सदाऽधिष्ठिता ।
बालस्यास्य बलप्रदा भव महासंसार युद्धे रत-
स्यालस्यार्ति निवारिणी च जयदेत्यभ्यर्थये त्वां सदा ।५।
बाले बाणमनोजपंचक मनोजेष्टात्रिशक्त्यावृते ।
बालानङ्गसुमाष्टकादिमलयाद्यष्टासनासेविते ।
ब्राह्म्याद्यष्ट सुशक्ति भैरवनुते श्री हेतुकाद्यावृते
दिक्पालाद्यखिलावृते कुरु ममानन्तस्य सौख्यं निजम् ।६।

।। इति श्री बाला स्तोत्रम् सम्पूर्णम् ।।

श्री दुर्गास्तोत्रम्

लक्ष्मीशे योगनिद्रां प्रभजति भुजगाधीतल्पे सदर्पा
 दुत्पन्नौ दानवौ तच्छ्रवणमलमयांगौ मधुं कैटभञ्च ।
दृष्ट्वा भीतस्य धातुः स्तुतिभिरिभनुता माशु तौ नाशयन्तीं
 दुर्गां देवीं प्रपद्ये शरणमहंशेषापदुन्मूलनाय ।१।

युद्धे निर्जित्य दैत्यस्त्रिभुवनमखिलं यस्तदीयेषु धिष्ण्ये-
 ष्वास्थाण स्वान् विधेयान् स्वयमगमदसौ शक्रतां विक्रमेण ।
तं सामात्याप्तमित्रं महिषमभिनिहत्यास्य मूर्धाधिरूढां
 दुर्गां देवीं प्रपद्ये शरणमहमशेषापदुन्मूलनाय ।२।

विश्वोत्पत्तिप्रणाशस्थिति विहृतिपरे देवि घोरामरारि
 त्रासात् त्रातुं कुलं नः पुनरपि च महाङ्कटेष्वी दृशेषु ।
आविर्भूया: पुरस्तादिति चरणमगत्सर्वगीर्वाणवर्गां
 दुर्गां देवीं प्रपद्ये शरणमहमशेषापदुन्मूलनाय ।३।

हन्तुं शुंभं निशुंभं विबुधगणनुतां हेम डोलां हिमाद्रा-
 वारूढां व्यूढदर्पान् युधि निहतवतीं धूम्रदृक् चण्डमुण्डान् ।

चामुण्डाख्यां दधानामुपशमितमहारक्तबीजोपसर्गां
दुर्गां देवीं प्रपद्ये शरणमहमशेषापदुन्मूलनाय ।४।

ब्रह्मेशस्कन्दनारायण किटिनरसिंहेन्द्रशक्तीः स्वभृत्याः
कृत्वा हत्वा निशुंभं जितविभुधगणां त्रासिताशेषलोकम् ।
एकीभूयाथ शुंभं रणशिरसि निहत्यास्थितामात्तखड्गां
दुर्गां देवीं प्रपद्ये शरणमहमशेषापदुन्मूलनाय ।५।

उत्पन्ना नन्दजेति स्वयमवनितले शुंभमन्यं निशुंभं
भ्रामर्याख्यारुणाख्यं पुनरपि जननी दुर्गमाख्यं निहन्तुम् ।
भीमा शाकम्भ रीति त्रूटितरिपुभटां रक्तदन्तेति जातां
दुर्गां देवीं प्रपद्ये शरणमहमशेषापदुन्मूलनाय ।६।

त्रैगुण्यानां गुणानामनुसरण कलाकेलिनानावतारै-
स्त्रैलोक्यत्राणशीलां दनुजकुलवनीवह्निलीलां सलीलाम् ।
देवीं सच्चिन्मयीं तां वितरितविनमत्स त्रिवर्गापवर्गां
दुर्गां देवीं प्रपद्ये शरणमहमशेषापदुन्मूलनाय ।७।

सिंहारूढ़ां त्रिनेत्रां करतलविलसच्छंख चक्रासिरम्यां
भक्ताभीष्टप्रदात्रीं रिपुमथनकरीं सर्वलोकैकवन्द्याम् ।
सर्वालङ्कारयुक्तां शशियुतमुकुटां श्यामलांगी कृशांगी
दुर्गां देवीं प्रपद्ये शरणमहमशेषापदुन्मूलनाय ।८।

त्रायस्व स्वामिनीति त्रिभुवनजननि प्रार्थना त्वय्यपार्था
पाल्यन्तेऽभ्यर्थनायां भगवति शिशवः किन्त्वनन्या जनन्या ।
तत्तुभ्यं स्यान्नमस्येत्यवनतविबुधाह्लादवीक्षा विसर्गां
दुर्गां देवीं प्रपद्ये शरणमहमशेषापदुन्मूलनाय ॥९॥

एतं सन्तः पठन्तु स्तवमखिलविपज्जालतूलानलाभं
हृन्मोहध्वान्तभानुप्रतिममखिलसङ्कल्पकल्पद्रुकल्पम् ।
दौर्गं दौर्गत्यघोरातपतुहिनकरप्रख्यमंहोगजेन्द्र-
श्रेणीपञ्चास्यदेश्यं विपुलभयदकालाहिताक्ष्र्यप्रभावम् ॥१०॥

॥ इति श्री दुर्गास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

॥ ओं ह्रीं ॥

श्रीसद्गुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः ॥

॥ श्रीविद्यागद्यम् ॥

श्रीमत्कनकाचलोर्ध्व मध्यशृङ्ग. विराजमान सुधासागर वलयित रत्नद्वीपविराजमान लोहमय रत्नमय पञ्चविंशति-वप्रान्तर्गत नानावृक्षमहोद्यान कल्पवाटिकादि षड्वाटिका नवरत्नप्राकार माणिक्यमण्डप सहस्रस्तम्भमण्डपामृतादिवा-पिकात्रय बालातपोद्गार चन्द्रिकोद्गार महाशृङ्गारपरिखा महापद्माटवी चिन्तामणिमयगृहराजाद्युपशोभित श्रीपुरायिते भूमण्डलवनिताकाञ्चीभूतकाञ्चीमण्डले, तत्तद्वर्णोचितकर्म-परायणचातुर्वर्ण्यविराजिते, विधिविहितयज्ञातिपाविते, अति-महिते । हयग्रीवरूपधरविष्णूपदिष्टललिताचरितामृतास्वादा-तितुष्टचित्तरङ्गविशिष्टागस्त्याश्रमोपशोभिते । अम्बाकम्प-प्रदकम्पानदीकूलविलसदेकाम्रमूलाचरिततपःकामाक्ष्याऽलिङ्गि-तैकाम्रनाथसंभोभिते । कविवरवरदवरदराजोपशोभिते । दुर्वासनाविहीनदुर्वाससाराधिते । वाञ्छितार्थप्रदश्रीचक्राकार-काञ्चीपुरे । श्रीविद्यारत्नसूत्रकृद्गौडपादाचार्यान्तेवासि-

गोविन्दयोगीन्द्रकृताद्वै तदीक्षैः अद्वै तामृतरसभक्षैः मुमुक्षुजन-पक्षैः ऊरीकृतात्मभिक्षैः द्वै तवादिकुम्भीन्द्र- कुम्भदलनसिंह-पोतैः त्र्यक्षाभेदैः श्री मद्भगवत्पादैः प्रतिष्ठापितश्रीचक्रमध्य-निवासिनि ॥

पृथ्वीबीजप्रकृति भूपुराकृति त्रिपुराचक्रेशी प्रकटयोगि-न्यणिमादिदशसिद्धि ब्राह्म्याद्यष्टशक्ति सर्वसंक्षोभिण्यादिदश-मुद्राऽणिमासिद्धिसर्वसंक्षोभिणीमुद्राशोभित त्रैलोक्यमोहनचक्र-वासनाभूत जाग्रद्दशासाक्षिणि ॥

चन्द्रबीजप्रकृति षोडशदलाकृति त्रिपुरेशी चक्रेशी गुप्त-योगिनी कामाकर्षिण्यादि षोडषदेवता लघिमासिद्धि सर्व-विद्रा विणीमुद्राशोभित सर्वाशापरिपूरक चक्रवासनाभूत स्वप्नदशा साक्षिणि ॥

शिवबीज प्रकृत्यष्टदलाकृति त्रिपुरसुन्दरीचक्रेशी गुप्त-तरयोगिन्यनङ्गकुसुमाद्यष्टदेवता महिमासिद्धि सर्वाकर्षिणी-मुद्राशोभित सर्वसंक्षोभणचक्रवासनाभूत सुषुप्तिदशासा-क्षिणि ॥

कामकलाबीजप्रकृति चतुर्दशाराकृति त्रिपुरवासिनी-चक्रेशी संप्रदाययोगिनी सर्वसंक्षोभिण्यादि चतुर्दशदेवतेशित्व-

सिद्धि सर्ववशङ्करीमुद्राशोभित सर्वसौभाग्यदायक चक्रवासना भूतेश्वरविचारवृत्त्यधिष्ठानचैतन्ये ॥

विष्णुबीजप्रकृति बहिर्दशाराकृति त्रिपुराश्रीचक्रेशी-कुलोत्तीर्णयोगिनी सर्वसिद्धिप्रदादिदशदेवता वशित्वसिद्धि सर्वोन्मादिनीमुद्राशोभित सर्वार्थसाधकचक्रवासनाभूत गुरूपस-दनाकारवृत्यारूढ़चैतन्ये ॥

अग्निबीजप्रकृत्यन्तर्दशाराकृति त्रिपुरमालिनीचक्रेशी निगर्भयोगिनी सर्वज्ञादिदशदेवता प्राकाम्यसिद्धि सर्वमहा-ङ्कुशामुद्राशोभित सर्वरक्षाकरचक्रवासनाभूत श्रवणवृत्या-रूढ चैतन्ये ॥

कामेश्वरबीजप्रकृत्यष्टकोणाकृति त्रिपुरासिद्धाचक्रेशी रहस्ययोगिनी वशिन्याद्यष्टदेवता भुक्तिसिद्धि सर्वखेचरीमुद्रा-शोभित सर्वरोगहरचक्रवासनाभूत मननवृत्यारुढचैतन्ये ॥

त्रिशक्तिबीजप्रकृति त्रिकोणाकृति त्रिपुराम्बाचक्रेश्यति-रहस्ययोगिनी बाणाद्यायुधचतुष्टय महाकामेश्वर्यादि महात्रि-पुरसुन्दर्यन्त चतुर्देवतेच्छासिद्धि सर्वबीजमुद्राशोभित सर्व-सिद्धिप्रदचक्रवासनाभूत निदिध्यासनवृत्यारूढचैतन्ये ॥

परब्रह्मात्मकाऽस्पर्शं बिन्द्वाकृति महात्रिपुरसुन्दरीचक्रेशी परापरातिरहस्ययोगिनी महात्रिपुरसुन्दरीदेवता प्राप्तिसिद्धि सर्वयोनिमुद्राशोभित सर्वानन्दमयचक्रवासनाभूत सविकल्पसमाधिवृत्त्यधिष्ठानचैतन्ये ।

सर्वकामसिद्धि सर्वत्रिखण्डामुद्रा समस्तचक्रेश्वरीसहित-तुरीयविद्यावासनाभूत निर्विकल्पसमाध्युदित सहजावस्था-स्वरूपे ।

स्वस्वरूपाऽभिन्नहृदयादिषडङ्गदेवीभिरुपाश्रिते । काल-स्वरूप कामेश्वर्यादिपञ्चदशतिथिनित्यासेवितमहानित्यास्व-रूपे । बिन्द्वधिष्ठित श्रीविद्यानन्दनाथात्मक चर्यानन्दनाथा-भेदस्वरूपे । त्रिकोणस्थवामपूर्वदक्षिणरेखास्थितैः प्रकाशा-नन्दनाथादिनववासरनाथसंसेवितैः त्रेताद्वापरकलियुगगुरुभूतैः उड्डीशषष्ठीशमित्रेशानन्दनाथैरुपसेविते । मुनिवेदनागसंख्याक दिव्यसिद्धमानवौघाख्य पारंपर्यं गुरुमण्डलाभेदगुरुत्रयसंसे-विते ।

पृथिव्यादिशिवान्त षट्त्रिंशत्तत्वसोपानसहित पञ्चब्रह्म-मय दिव्यमञ्चविराजमान निर्विशेषब्रह्मात्मक महाकामेश्व-राङ्कस्थिते । सविकल्पसमाधिवृत्त्युदित पञ्चभूमिकास्वरूप साम्यलयविनाशात्यन्ताभावातीतोदिताख्य पञ्चपङ्क्तिकाधि-

ष्ठित महाप्रकाशे । षडध्वाधारदर्शनाम्नायातीत महाप्रकाश महाविमर्शे । स्वगात्रप्रभारुणित ब्रह्माण्डे लीलाकन्दुकीभूत-ब्रह्माण्डकरण्डे । स्वेच्छासृष्टजगदण्डे । स्वप्रकाशितब्रह्माण्डाऽभेदपिण्डाण्डे । अंहकारस्वरूपदण्डनाथासंसेविते । बुद्धिस्वरूपमन्त्रिण्युपसेविते । अनाद्यविद्यावासनोद्भूत मल-त्रययुत-शरीरत्रयजनित दुर्वासनावृत्तिरूपभण्डाद्यसुरविनाशनाय स्वाङ्गसृष्टसद्वासनावृत्तिस्वरूपशक्तिकदम्बसंसेविते । स्वभक्तावनाय स्वेच्छास्वीकृतातिललितदिव्यशरीरे । आत्मगोचरवृत्तिस्वरूप चतुष्षष्ट्युपचारोपचर्ये । प्रतिराकासमनुष्ठीयमान चिदानन्दपूर्ण नवावरणार्चनाप्रिये । विमलप्रकाशात्मगुहोद्भूत चिदानन्दरसपूर्णे, अनन्तानन्दसंपूर्णे । प्रकाशविमर्शसामरस्यात्मक परब्रह्मस्वरूपिणि, परामृतशक्ते, स्वंमन्त्रेश्वरि, सर्वतन्त्रेश्वरि, सर्वयन्त्रेश्वरि, सवपीठेश्वरि,सर्वयोगेश्वरि, सर्ववागीश्वरि, सर्वसिद्धेश्वरि, सर्ववीरेश्वरि, सकलजगदुत्पत्तिमातृके सचक्रे, सदेवते, सासने, सायुधे, सशक्ते, सवाहने, सपरिवारे, सचक्रेशि, पराऽपरापरापरारूप सपर्योपचार पूजनतर्पण संतुष्टचित्ते, पराशक्ते, श्रीमत्कामकले, कामाक्षि, मातः, नमस्ते, नमस्ते पाहि मां पाहि माम् ॥

॥ ओं ह्रीं ॥

श्रीसद्गुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः ॥

श्रीसुब्रह्मण्यगद्यम् ॥

श्रीमत्कमलासनदत्तवरासुरपीडित देवेन्द्रमुख सुरसङ्घ तपः संतुष्टपार्वतीरमणललाटनेत्रसंभूत, महाप्रकाशस्वरूप, सच्चिदानन्दस्वरूप ॥

हिमालयतपः प्रभावावतीर्णचिच्छक्तिकुमार, हिमांशुसंनिभमुखोद्भूतापाङ्गदृष्टिकौमुदीपानरसिकभक्तचकोर, परमशान्ताद्रिविहरण, परमशान्तासुरप्राणहरण, कृत्तिकासंवर्धितपञ्चभूतमयगात्र कृत्तिवासोमाप्रेमपरिपूर्णपात्र, कुमारमणभागिनेय, कुमारजनभागधेय, कुमारनामधेय ॥

लीलाकृतपञ्चकृत्य, लीलातत्परनिजभृत्य मधुरतर वाग्दाननिपुण, मधुरसिकवीरघोषितकरुण । वनजासनशिक्षक, वनजासंरक्षक । परमशिववरतत्वार्थबोधक, परमशिवहृरतत्वार्थोद्बोधक । पञ्चवक्त्राकारकुम्भसंभवतत्वोपदेश विचक्षण, पञ्चकोशमयशरीरविलक्षण । द्वादशकराशोभितशक्त्याद्यायु-

धजाल, द्वादशकलाशोभितसूर्यमण्डलविहरणशील । मत्तमातङ्गमुखासुरयमाकार, मत्तमातङ्गमुखानुजशुभाकार । मायासंभूतशूराद्यसुरकुलारण्यदावानल, मायाकार्यमलत्रयनाशनचतुरतरपदकमल । द्वेधाविदारितासुरतनुसंभूतताम्रचूडशिखिध्वजवाह, द्वेधाविभाजितशिवशक्त्यैक्यसंजातानन्दप्रवाह । नीलकण्ठपुत्र, नीलकण्ठपत्र । वनेचरसुतादत्तमधुमिश्रितप्रियङ्गुधान्यकृतादर, वनेचरवेषपार्वतीरमणमनोहर । शरीरकान्तिजितमीनकेतन, शरीरिहृद्वारिजनिकेतन । कर्मज्ञानस्वरूपपादाम्बुजद्वय, कर्मज्ञानविहीनदूरतराद्वय । कमनीयतमकाञ्चनमयचेल, कमलापतिमुखसुरसन्नुतशिवबाल । शुद्धचित्तनीलग्रीवाधिष्ठान, शुद्धचित्तपरमहंसहृदब्जावस्थान । विशालहृदय, विशाखसदय । सच्चित्तरङ्गमालिसंजातानन्दमुक्तामणे, सच्चित्तरङ्गनन्दनृत्तंकर नटनशिखामणे । देवराजसेनापते, देवराजकन्यापते । षडास्यभूतसर्वज्ञत्वादिगुण, षडाम्नायान्ते विहरण । गुरुतराज्ञानेभवर्गपञ्चानन, गुरुतरज्ञानदाननिपुणषडानन । वाताशनानन्तोरगाभयकर, वाताशनिमुखमहाभयहर । सत्यानृतमिश्रितजडप्रपञ्चाधिष्ठान, सत्यसिंहासनासीन । षडङ्गदेवतापरिवृत, षडम्बुरुहचक्रान्तःस्थित । दिव्यौघभूत दक्षिणामूर्ति नारायण ब्रह्म सनक सनातन सनन्दन सनत्कुमाराभेद-

स्वरूप, दिव्यज्ञानिवरसंस्तूयमानामितप्रताप । सिद्धौघभूत कश्यपात्रि भरद्वाज विश्वामित्र गौतम जमदग्नि वसिष्ठ शुकागस्त्य ऋभु निदाघ दत्तात्रेयसंस्तुतचरण, सिद्धमुनिगन्धर्वयक्षादिशरण । मानवौघभूत गोरक्ष मत्स्य कोङ्कण भोग कल्हाट वीरेन्द्र मलयाचलमध्यगिरानन्दनाथसंघोषितनिजप्रभाव, मानवानुग्रहकरणस्वभाव । शान्तविमलप्रकाशात्मगुहोद्भूतचिदानन्दमूर्ते, शान्ताकारनिजानन्दपरिपूर्ते ।

अणिमा महिमा गरिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्येशित्व वशित्वाष्टक, विवेकवैराग्यशमदमोपरतितितिक्षाश्रद्धासमाधानमुमुक्षुताश्रवण मनन निदिध्यासनद्वादशक, वीरबाहु वीरकेसरि वीरमहेन्द्र वीरमहेश वीरपुरन्दर वीराक्ष वीरमार्तण्ड वीरान्तक वीरधीरनवकसंशोभित प्रथमावरणभूत भूपुरत्रयात्मक दिक्चक्राधिष्ठित चिदग्निस्वरूपापरिच्छिन्नपरब्रह्ममूर्ते ।

सत्वरजस्तमोगुणमायाचतुष्टय, परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी चतुष्टय, भूत गुण ज्ञान कर्मेन्द्रियपञ्चक चतुष्टय संशोभित द्वितीयावरणभूत वृत्तत्रयात्मकगुणचक्राधिष्ठित गुणातीतस्वरूप निस्त्रैगुण्यपरब्रह्ममूर्ते ।

कलाकाष्ठाघटिकामुहूर्तदिवसपक्षमासर्त्वयनसंवत्सरयुग-

कालसंशोभित तृतीयावरणभूत द्वादशदलकमलात्मक कालचक्राधिष्ठित कालकालस्वरूप नित्यपरब्रह्ममूर्ते ।

सर्वज्ञनित्यतृप्तानादिबोधनित्यमलुप्तस्वतन्त्रानन्तबोध भूम्यन्तरिक्ष स्वर्गाग्नि सूर्यसोममण्डल संशोभित तुरीयावरणभूत षड्दलकमलात्मक सर्वज्ञचक्राधिष्ठित भूमास्वरूपसर्वैश्वर्यप्रदपरब्रह्ममूर्ते ।

ऋग्यजुस्सामाथर्ववेदसंभूतमहावाक्यचतुष्टय, शिक्षाकल्पव्याकरणच्छन्दोज्योतिर्निरुक्तशास्त्रषट्क शैववैष्णवशाक्तगाणापत्यसौरकापालिकदर्शनषट्क परशिलाजयन्तीशुद्धचित्तपूर्णगिरिपूर्णफलवनगिरिपीठषट्कसंशोभितपञ्चमावरण भूत षट्कोणचक्रात्मक वाग्भवचक्राधिष्ठित वाचामगोचरस्वरूप परब्रह्ममूर्ते ।

अकारोकारमकारात्मकेच्छाज्ञानक्रियाशक्तिस्वरूपवाणीवैष्णवीरुद्राणीसमेतब्रह्मविष्णुरुद्रोंकारात्मक पराशक्तिस्वरूपमायाविशिष्ट कारणेश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप विद्याशक्तिसंशोभित षष्ठावरणभूत त्रिकोणचक्रात्मक शक्तिचक्राधिष्ठित विद्यास्वरूपपरब्रह्ममूर्ते ।

ब्रह्मण्यसंशोभित सप्तमावरणभूत बिन्दुचक्रात्मकपरब्रह्मचक्राधिष्ठित परब्रह्ममूर्ते ॥

निश्चिन्तनध्यान, सर्वकर्मनिराकरणावाहन, निश्चयज्ञानासन, उन्मनीभावपाद्य, सदाऽमनस्कार्घ्यं सदादीप्तिसारामृतवृत्तिस्नान, सर्वात्मभावगन्ध, दृक्स्वरूपावस्थानाक्षत, चिदाप्तिपुष्प, चिदग्निस्वरूपधूप, चिदादित्यस्वरूपदीप, परिपूर्णचन्द्रामृतैकीकरणनैवेद्य, निश्चलत्वप्रदक्षिण, सोऽहंभावनमस्कार, मौनस्तुतिस्तुत, सर्वसंतोषविसर्जनात्मकषोडशोपचारसंतृप्त, नित्यतृप्त; सर्वमन्त्रमूर्ते सर्वतन्त्रमूर्ते, सर्वयन्त्रमूर्ते, सुब्रह्मण्यमूर्ते, ब्रह्मण्यपूर्ते, गुरुगुह, नमस्ते, नमस्ते, पाहि मां पाहि माम् ।।शुभम्।।

इति श्रीगुहानन्दमन्डलीस्थापक तदध्यक्ष श्रीचिदानन्दनाथपादकमलरेणुना अनन्तानन्दनाथदीक्षानाम्ना स्वामिशास्त्रिणा विरचितं गद्यद्वयम् ।।

शुद्धि - पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	पातनिका	पातानैका
			(आगे सर्वत्र इसे शुद्ध पढ़ें)
	१२	रुप	रूप
२	२	पुरुच्येषा	प्ररुच्येषा
	७	ब्रम्हाण्ड	ब्रह्माण्ड
	२३	पृश्नि	शृंगी
३	९	कामानिय	कामानियं
४	४	उपनिषदाबा	उपनिषदा वा
	९	सभ्यक्	सम्यक्
	१८	कभी, समर्थं	कभी "समर्थं"
	२३	तमः	तपः
५	१३	सौभाग्यवति	सौभाग्यवती
		कमरन्द	मकरन्द
	१९	राममूर्ती	राममूर्ति
६	२	गुरुर्ब्रम्हा	गुरुर्ब्रह्मा
	३	ब्रम्ह / गुरुवे	ब्रह्म / गुरवे
	४	श्री पंचकम्	श्री पञ्चकम्
			(आगे भी सर्वत्र इसे शुद्ध पढ़ें)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	७	घटना है	घटना है ।
	१०	०ब्रम्ह	ब्रह्म
			(आगे भी सर्वत्र इसे शुध्द पढ़ें
	१७	०स्वरुपिणि	०स्वरूपिणी
८		सम्पूर्ण पृष्ठ	इस पृष्ठ की छपाई निरस्त समझें
९	१५	अर्थात्	अर्थात् मंत्रशिक्षा
१०	६	एतन्मयंनुम	एतन्मयं नुमः
	१०	सभव	संभव
	११	मूमि	भूमि
१२	२०	महाषोडषी	महाषोडशी
१३	२	मध्यान्ह	मध्याह्न
१४	७	सख्या	संख्या
१८	११	सतान	संतान
	१२	कदब	कदम्ब
१९	८	आर्य द्विशति	आर्याद्विशती
	९	गवर्धलोक	गन्धर्वलोक
२०	९	यत्र	यन्त्र
२१	१४	लक्ष शाधन	लक्ष साधन
२२	५	अलकारिक	अलंकारिक
	२१	अगुली	अंगुली
२३	१६	दितीय	द्वितीय
२८	१७	अगस्तस्य	अगस्त्य
	१८	महान सतो	महान् सन्तों
३३	४	गध	गन्ध
४१	३	दिव्यौध	दिव्यौघ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	४	सिद्वौघ / मानवौघ	सिद्‌घौघ / मानवौघ
	९	नपता	नप्ता
४४	६,८,१८	चिन्तामणी	चिन्तामणि
	१४	स्वरूपिणि	स्वरूपिणी
४५	१२	भ्रमरांविका	भ्रमराम्बिका
४६	५	अर्तनिहित	अन्तर्निहित
	९	हृदपद्म	हृत्पद्म
५२	११	दिव्यौव/सिध्दौघ	दिव्यौघ/सिद्धौघ
५३	१०	वदन	वन्दन
६९	१२	यहि	यही
७२	१४	अपर्वंग	अपवर्ग
	१५	पर्वंग	पवर्ग
	१६	बन्ध्वाश्व/ममतापिचा	बन्धश्च/ममताऽपि च
		"श्री वल्लभ नामावली"	
२	५	श्लिष्टोज्जलद्	श्लिष्टोज्ज्वलद्
	६	करोविह्नो	करो विघ्नो
	१०	श्रीलक्ष्यै	श्रीं‌लक्ष्म्यै (ओं सभी नमस्कारों के पूर्व कहें)
	२०	सिम्हाय	सिंहाय
२	२/३	ह्लींकारा	ह्लींकार
	९५	गजारूढाय नमः	(अधिक पाठ)
	२१,२२,२६	ग्लौं	ग्लौं
४	१५	दतकाय	दन्तकाय
५	२२	सुघनाय	सुघनाय
६	७	महाकीर्तिं	महाकीर्तिं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	२	हरिध्य	हरि हय
		शिवनामावली	
	९	हनुमत	हनुमत्
८	४	पभुढ़म्	पगूढम्
	५	त्रिणेत्रम्	त्रिनेत्रम्
	१३	नद्याय	ओं नद्याय (आगे सभी नमस्कारों के पूर्व 'ओं' समझें)
९	१९	शिवराध्या	शिवाराध्या
	२०	शिवलालित	शिवालालित
१०	५	नहिछपा	यज्ञाय नमः
१२	१७	हयग्रीवेष्टदारै	०दायै
१३	३	भाङ्ग्यै	भाङ्‌ग्यै
	७	अम्वुज	अम्बुज
	११	वामङ्क्ण	वामाङ्क
१४	४	सुंन्दर्यं	सुन्दर्यं
१५	११	तवाज्ञा/रथं	ॐ तवाज्ञा/स्थं
	१२	परंशंभुंवंदे	परं शम्भुं वन्दे
	१३	-शुची	शुचि
	१४	हिभा लोक	हि भालोकभवने
	१५	शुद्ध/व्योमं	शुद्धं/व्योम
१६	१	सरणें	सरणिम्
	२	चकोरी वजगति	चकोरीव जगति
	३	समुन्सीलत्	समुन्मीलत्
	३	मकरं दै कर	मकरंदैकरसिकम्
	७	मरूप:	मद्रूप:

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	९	परिणद्धें	परिणद्धेन्द्रं
		धनुषी	धनुषाम्
	११	वर्षंत/	वर्षन्तं/
		तत्पंत्रि	तप्तं त्रि
	१३	तमीढ़े/संवंर्त/	तमीड़े/संवर्त/
		तांजसमयां	तां च समयाम्
	१५	दयार्द्रांते	दयार्द्रा ते
	१६	समययालास्य	समयया लास्य-
	१७	नवात्मानंवंदे	नवात्मानं वन्दे
	२०	जननीमन्त-गंदिदं	जननीमज्जगददिम्
	१	व्योनस्तवं	व्योमस्त्वं
	३	विश्वव पुष।।७।/ (पंक्ति छपी नहीं)	विश्ववपुषा ।। चिदान्दाकारं शिवयुवति भावेन विभृते ।।७।। [विमृषे]
	५	ऊँ श्रीमदधन्दिने	ऊँ श्रीमदद्मदिने
	६	अंतर्यंजन	अन्तर्यंजनं
	९	देवी	देवि
	१७	शिवादूती	शिवदूति
१८	४/५/६	मयी	मयि
	७	चार्यानाथं	चर्यानाथं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	९	समयांवां	समयाम्वां
	११	"तत्ध्यानं"	"तद्ध्यानम्"
	१२	समययालास्यं	समयया लास्य-
	१४	० ताभ्यां उभय	ताभ्यामुभय
	१५	मूलाधार	मूलाधारे
	१७	आगस्तिमयि	अगस्त्यमयि
१९	७	वासुदेवमयी	वासुदेवमयि
	१०	लधिमा	लघिमा
	११	इशित्वं	ईशित्वं
	१७	स्त्राधिष्ठान्/	स्वाधिष्ठान-
		देवताः /	देवताः ।।
		ऊँ लोपां	ॐ श्री लोपां
	१८	दव्यधिकं	द्व्यधिकं
	१९	श्रीमत्	श्रीमद्
	२०	लिग / ध्यायंत्	लिङ्ग / ध्यायेत् ।।
२०	१	तत्ध्यानं	तद्ध्यानम्
	२	मधिष्ठाय	मधिष्ठाय
	३	महृति तांच	महतीं तां च
	६	क्षितौषट /	क्षितौ षट् /
		पंचाशत्	पंचाशद्
	८	त्रिंश मनसि	त्रिंशन्मनसि
	९	प्यु परितव /	प्युपरि तव
		युगं ।।	युगम् ।।
	१०	स्वाधिष्ठाने /	स्वाधिष्ठान /
		ध्यानं	ध्यानम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१२	कौमारी	कौमारि
	१३	चामुंडी	चामुण्डि
	१४	महालक्ष्मी	महालक्ष्मि
२१	२	सर्वयोने ।२९।	सर्वयोनि ॥२९॥
	३	त्रिखंड /	त्रिखण्ड /
		त्रेलोक्य	त्रैलोक्य
	४	त्रेलोक्य	त्रैलोक्य
	१४	श्रीबीजा/ कर्षण्यंत	श्रीबीजाकर्षणान्त-
	१६	आग्नेयेतध्याये	आग्नेये ध्यायेत्
	१७	तत्ध्यानं	तद्ध्यानम्
	१८	शत्तया	शक्या
२२	२	तत्वं	तप्तं
	९	कुसुमें	कुसुमे
	१२/१३	अनंगा-	अनंगां
	१४	सर्वं	सर्वं
	१६	संक्षोभण	संक्षोभिन्
	१७	विद्राविण	विद्राविन्
२३	२	स्तभिन्	स्तम्भिन्
	३	वशंकरी	वशंकरि
	४	रंजन्/सर्वार्थं-	रंजिन्/सर्वार्थं-
	६	पुरण	पूरण
	८	चजुः पंचाशत्	चतुः पंचाशद्
	१०	अनाहृत	अनाहत
	१२	मकरंदैक	मकरदैक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१३	भजेहं किमपि	भजे हंसं द्वन्द्वं किमपि
	१६	गेण/मभ्धः	गुण/मद्भ्यः
		–॥५॥	॥५॥ इति ध्यायेत् ॥
	१७	धिष्टित	धिष्ठित
२४	२/१०/११	सोभाग्य	सौभाग्य
	४	प्रियंकारी	प्रियंकरि
	६	सर्वं	सर्वं
	९	विध्न	विघ्न
	१२	कुलोतिर्णं	कुलोत्तीर्णं
	१४	सर्वेश्व	सर्वेश्व
	१५	ज्ञानमयी	ज्ञानमयि
	१६	व्याधि	व्याधि
	१९	स्वरूपत्	स्वरूपिन्
२५	२	कामेश्वरी	कामेश्वरि
	५	कोलिन्	कौलिन्
	७	द्वासत्पतिरुपा	द्वासप्ततिरूपाद्
	८	रुपं	रूपं
	१०	तत्	तद्
	१३	सारुप्य सरापि	सारुप्य सरणिम्
	१४	तध्वंति/	तध्वान्ता/
		वजगति	चकोरीव जगति
	१६	धिष्टित	धिष्ठित
२६	२	वाणिनि	बाणिनि
	४	कामेश्वरी/	कामेश्वरि/
		वज्रेश्वरी	वज्रेश्वरि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१३	सुन्दरी	सुन्दरि
	१८	श्वरी/राज्ञी	श्वरि/राज्ञि
	१९	महाराजन्	महाराज
	२०	महगुप्ते	महागुप्ते
२७	६	पराचिन्दबा	पराचिदम्बा
	९	शंभु	शम्भुं
२८	२	व्योमस्तं	व्योमस्त्वं
	३	भूमि स्त्वंभि	भूमिस्त्वयि
	५	चिदानन्द	चिदानन्दा
	६	प्रभृतिभि/	प्रभृतिभिः/
		भीवनया	विनया
	६	कराचार्यैं	कराचार्यैः
	११	(जोड़िये) श्री परमगुरुनाथ श्री आनन्दानन्दनाथ (श्री परमहंस श्री परिव्राजकाचार्य श्री १००८ श्रीमत् श्री जगद्गुरू श्री शंकराचार्य महाराज श्री योगेश्वरानन्दतीर्थमहाराज, गोवर्धन पीठाधीश्वर, पुरी) से प्राप्त हुई है।	
२९	६	रहस्य	रहस्यं
	१०	षष्ठाम्नाय	षष्ठाम्नाये
	११	हृदयोध्र्दनः	हृदयोर्ध्वतः
	१२	तिष्ठन्ति	तिष्ठन्ति
३१	६	तन्मु लं	तन्मूलं
	८	समन्नातव	संमन्तात्तव
	९	वशाख्यं	वंशाख्यं
	११	काशी	काशीपीठम्

पेज	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१४	मुक्तिस्तक्योप	मुक्तिस्तस्योप
	१९	चाराधिना	चाराधिता
३१	२	देव	देवा
	४	तज्नानं	तज्जातं
	९	सिध्दिकृत	सिध्दिकृत्
	१०/११	नेपाळम्	नेपालम्
	११	स्यात	स्यात्
	१२	तदुच्चते	तदुच्यते
	१९	तैरूप	तैरुप
३२	१	योनिर्नि	योनीर्नि
	२	रोद्र	रौद्र
	१५	करिष्याति	करिष्यन्ति
३३	४	चक्रीरे	चक्रिरे
	१८	ऋकारः	ॠकारः
३४	१	ऋकारस्थ	ॠकारस्थ
	९	मत्थर्ता	?
	११	विन्धाभवन्तिहि	विघ्ना भवन्ति हि
	१४	नियति-	निपति-
		तस्मत्पीठे	तस्तत्पीठे
३५	२	विधार्थिना	विद्यार्थिनां
	५	पतिताः	पतिता
	६	प्राक	प्राक्
	९	ऐकारः	ऐकारः
	१०	ऐकारो भुत्	ऐकारो ऽभूत्

पेज	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		कामकोटे	कामकोटौ
		तु ऽपतत्	तु ते ऽपतत्
	११	सिध्दयन्ति	सिद्ध्यन्ति
	१२	समोराध्य	समाराध्य
	१६	सिध्यन्ति	सिध्द्यन्ति
३६	१	ओकारो भूच्च	ओकारो ऽभूच्च
	३	जेपेद्विजः	जपेद् द्विजः
	११	अतु	अं नु
	१४	कङ्कण	कङ्कणं
	१८	पतितोपि/चः	पतितो ऽपि/च
३७	४	कारो भूं	कारो ऽभू
	५	सर्वेपि	सर्वे ऽपि
	१३	कोणे भूदुप	कोणे ऽभूदुप
	१४	मुखशुध्दि	मुखशुध्दिकरा
		करामता	मता
३८	९	त्वंद्वादु पतनात्/	त्वद् बाहुपतनात्/
		नर्मदा धिष्ठितो	नर्मदाधिष्ठितो
		भवत्	ऽभवत्
	१३	ज्योतिष्यत्या/	ज्योतिष्मत्या/
		निवासोसौ	निवासो ऽसौ
३९	६	स्कन्धोत्र	स्कन्धो ऽत्र
	९	ङकारो भूत्/	ङकारो ऽभूत/
		निपतिंतस्व	निपतितस्तव
	१२	चकारो भूत-	चकारो ऽ भूत्
		वाम कक्षः	वामकक्षः

पेज	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१३	जयाभिद्या	जयाभिधा
४०	५	तत्रापराबलिः	तत्र परा बलिः
	८	तत्र पराबलिः	तत्रापरा बलिः
४१	५	भूत् दक्षोरु	ऽभूत् दक्षोरुः
	६	कालेश्वर	कालेश्वरः
	७	णकारो भूत्	णकारो ऽभूत्
		वामोरु	वामोरुः
	८	मृत्युंजायायुष्य-करण-सिध्यन्ति	मृत्युंजयायुष्य-करणमन्त्रा सिद्ध्यन्ति
४२	१	जघान्निपातिता	जंघा निपातिता
	४	जघा	जंघा
	१०	भाष्करा:	भास्करा:
	१७	देहुरसोत्र	देहुरसोऽत्र
४३	१	यत्रेव	यत्रैव
	३	तेस्थीनि	ते ऽस्थीनि
	५	प्राक	प्राक्
	१२	मायापुरम	मायापुरम्
	१६	तेपतत्	ते ऽपतत्
४४	२	यकारो भूत्तत्र	यकारो ऽभूत्तत्र
	५	दिमागस्य	हिमागस्य
	८	तत्र	यत्र
	९	जिव्हाग्रं	जिह्वाग्रं
	११	मज्जोप	मज्जाप
४५	३	वाममार्गेंधिको-भवत्	वाममार्गें ऽधिको-ऽभवत्

पेज	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	५	चापिमहा/	चापि महा/
		सकारोभू	सकारो ऽभू
	८	स्थाने भूध्द/	स्थाने ऽभूध्द/
		तेपतत्	ते ऽ पतत्
	११	ळकारो भूद्दृष्टा	ळकारो ऽभूद् दृष्टा
	१२	लब्ध्वाभूत	लब्ध्वाऽ भूत्
४६	२	कामरुप	कामरूप ः
	१३	ऐं	ऍं
	१६	करतल	करतलम्
४७	५	वामस्कन्ध	वामस्कन्धः
	१५	दक्षोरु	दक्षोरुः
	१६	वामोरु	वामोरुः
४८	१	पुरम/दक्षगुल्फ	पुरम्/दक्षगुल्फः
	२	वामगुल्फ	वामगुल्फः
	३	देहरस	देहरसः
	४।५	पार्ष्णि	पार्ष्णिः
	९	मातृका अंगानि	—
४९		ह्लीं	ह्लीं सब जगह
४९	९	सर्वंदुष्टा नां	सर्वंदुष्टानां
	१०	जिह्वा	जिह्वां
	१६	हुं	हूं
५१	१२	किलय-किलय	कीलय-कीलय

पेज	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५३	३	किलय-किलय	कीलय कीलय
५५	७	जान	जाँत
	१५	ततपरस्य	तत्परस्य
५६	७	व्राह्लया	व्राह्मया
५७	३	तच्छव	तच्छूव
	५	महंशेषा	महमशेषा
५९	२	भगवती	भगवति
६०	८	वाला	बाला
६१	५	योगी	योगि
	७	सर्वं	सर्वे
६२	६	बृत्या	वृत्त्या
	८	निगर्भं	निगर्भे
	९	वृत्या	वृत्त्या
	१२	सर्वं	सर्वे
	१३/१७	वृत्या	वृत्त्या
६६	५	शिवजक्त्यै	शिव शक्त्यै
	१५	षडान्मायान्ते	षडाम्नायान्ते
	१८	सिहासनासीन	सिंहासनासीन

कॉर्टन्स एण्ड प्रिन्टर्स
११, नन्दलालपुरा, इन्दौर